अन्तर्वीणा
आचार्य रजनीश

अन्तर्वीणा

[१५० पत्रों का संकलन]

•

भगवानश्री रजनीश

जीवन जागृति केन्द्र प्रकाशन

अन्तर्वीणा

[१५० अमृत-पत्रों का संकलन]

•

भगवान्श्री रजनीश

संकलन :

मा योग क्रान्ति

•

सम्पादन :

स्वामी योग चिन्मय

जीवन जागृति आन्दोलन प्रकाशन

भगवान्श्री रजनीश : एक परिचय

भगवान्श्री रजनीश वर्तमान युग के एक युवा-द्रष्टा, क्रांतिकारी विचारक, आधुनिक संत, रहस्यदर्शी-ऋषि और जीवन-सर्जक हैं।

वैसे तो धर्म, अध्यात्म व साधना में ही उनका जीवन-प्रवाह है; लेकिन कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, आधुनिक विज्ञान आदि में भी वे अनूठे और अद्वितीय हैं।

जो भी वे बोलते हैं, करते हैं, वह सब जीवन की आत्यंतिक गहराइयों व अनुभूतियों से उद्भूत होता है। वे हमेशा जीवन-समस्याओं की गहनतम जड़ों को स्पर्श करते हैं। **जीवन को उसकी समग्रता में जानने, जीने और प्रयोग करने के वे जीवन्त प्रतीक हैं।**

जीवन की चरम ऊँचाइयों में जो फूल खिलने संभव हैं, उन सबका दर्शन उनके व्यक्तित्व में संभव है।

११ दिसम्बर, १९३१ को मध्यप्रदेश के एक छोटे-से गाँव में इनका जन्म हुआ। दिन-दुगुनी और रात-चौगुनी इनकी प्रतिभा विकसित होती रही। सन् १९५७ में इन्होंने सागर-विश्वविद्यालय से दर्शन-शास्त्र में एम० ए० की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण की। ये अपने पूरे विद्यार्थी-जीवन में बड़े क्रांतिकारी व अद्वितीय जिज्ञासु तथा प्रतिभाशाली छात्र रहे। बाद में क्रमशः रायपुर व जबलपुर के दो महाविद्यालयों में क्रमशः १ और ८ वर्ष के लिए आचार्य (प्रोफेसर) के पद पर शिक्षण का कार्य करते रहे। इस बीच इनका पूरे देश में घूम-घूम कर प्रवचन देने व साधना-शिविर लेने का कार्य भी चलता रहा।

बाद में अपना पूरा समय **प्रायोगिक साधना के विस्तार व धर्म के पुनरुत्थान में** लगाने के उद्देश्य से आप सन् १९६६ में नौकरी छोड़ कर आचार्य-पद से मुक्त हुए। तब से आप लगातार देश के कोने-कोने में घूम रहे हैं। विराट् संख्या में भारत की जनता की आत्मा का इनसे सम्पर्क हुआ है।

इनके प्रवचनों व साधना-शिविरों से प्रेरणा पाकर अनेक प्रमुख शहरों में उत्साही मित्रों व प्रेमियों ने जीवन जागृति केन्द्र के नाम से एक मित्रों व साधकों

का मिलन-स्थल (संस्था) निर्मित किया है। वे भगवानश्री के प्रवचन व शिविर आयोजित करते हैं तथा पुस्तकों के प्रकाशन की व्यवस्था करते हैं। **जीवन जागृति आन्दोलन** का प्रमुख कार्यालय बम्बई में लगभग ८ वर्षों से कार्य कर रहा है। अब तो भगवानश्री भी अपने जबलपुर के निवास-स्थान को छोड़ कर १ जुलाई, १९७० से स्थायी रूप से बम्बई में आ गये हैं, ताकि जीवन जागृति आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को सहयोग मिल सके।

जीवन जागृति आन्दोलन की ओर से एक मासिक पत्रिका "युकान्द" (युवक क्रांति दल का मुख-पत्र) पिछले दो वर्षों से तथा एक त्रैमासिक पत्रिका "ज्योति शिखा" पिछले पाँच वर्षों से प्रकाशित हो रही है। भगवानश्री के प्रवचनों के संकलन ही पुस्तकाकार में प्रकाशित कर दिये जाते हैं। अब तक लगभग २८ बड़ी पुस्तकें तथा २१ छोटी पुस्तिकाएँ मूल हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं। अधिकतर पुस्तकों के गुजराती, अंग्रेजी व मराठी अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। १३ नयी अप्रकाशित पुस्तकें प्रेस के लिए तैयार पड़ी हैं। अब तक भगवानश्री प्रवचनमालाओं में तथा साधना-शिविरों में लगभग २००० घंटे जीवन, जगत् व साधना के सूक्ष्मतम व गहनतम विषयों पर सविस्तार चर्चाएँ कर चुके हैं।

अब भारत के बाहर भी अनेक देशों में इनकी पुस्तकें लोगों की प्रेरणा व आकर्षण का केन्द्र बनती जा रही हैं। **हजारों की संख्या में देशी व विदेशी साधक इनसे विविध गूढ़तम साधना-पद्धतियों एवं प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में प्रेरणा पा रहे हैं।** योग व अध्यात्म के संदेश व प्रयोगात्मक जीवन-क्रान्ति के प्रसार हेतु विभिन्न देशों से इनके लिए आमंत्रण आने शुरू हो गये हैं। शीघ्र ही भारत ही नहीं, बरन् अनेक पाश्चात्य देशवासी भी इनके व्यक्तित्व से प्रेरणा व सृजन की दिशा पा सकेंगे।

२५ सितम्बर, १९७० से मनाली में आयोजित एक दस दिवसीय साधना-शिविर में भगवानश्री के जीवन का एक नया आयाम सामने आया। उन्होंने वहाँ कहा कि संन्यास जीवन की सर्वोच्च समृद्धि है, अतः उसे पूर्णता में सुरक्षित रखा जाना चाहिए। उन्हें वहाँ प्रेरणा हुई कि वे संन्यास-जीवन को एक नया मोड़ देने में सहयोगी हो सकेंगे और **नाचते हुए, गीत गाते हुए, आनंदमग्न, समस्त जीवन को आलिंगन करने वाले, सशक्त व स्वावलम्बी संन्यासियों के वे साक्षी बन सकेंगे।** शिविर में तथा उसके बाद भी अनेक व्यक्तियों ने सीधे परमात्मा से सावधिक

(Periodical) संन्यास की दीक्षा ली। भगवानश्री इस घटना के साक्षी व गवाह रहे।

इस **"नव संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय** (Neo-Sannyas-International) में अब तक ४३२ व्यक्तियों ने संन्यास के जीवन में प्रवेश किया है। कुछ ही वर्षों में इनकी संख्या सैकड़ों व हजारों की होने वाली है। **ये संन्यासी जीवन की पूर्ण सघनता व व्यवहार में सक्रिय भाग लेने के साथ ही साथ विशिष्ट साधना-पद्धतियों में रत हैं।** इस दिशा में संन्यासियों का एक 'कम्यून' "विश्वनीड़" के नाम से पोस्ट-आजोल, तालुका-बीजापुर, जिला-महेसाणा (गुजरात) में कार्यरत हो चुका है। ये **संन्यासी** भगवानश्री रजनीश की नयी जीवन-दृष्टि, जीवन-सृजन, **जीवन-शिक्षा एवं प्रायोगिक धर्म-साधना के बहु-आयामों में निपुण एवं सक्षम होकर भारत एवं विश्व के कोने-कोने में धर्म व संस्कृति के पुनरुत्थान तथा "धर्म-चक्र-प्रवर्तन"** हेतु बाहर निकल रहे हैं।

भगवानश्री का व्यक्तित्व अथाह सागर जैसा है। उनके सम्बन्ध में संकेत मात्र हो सकते हैं। जैसे कि जो व्यक्ति परम आनंद, परम शांति, परम मुक्ति, परम निर्वाण को उपलब्ध होता है, उसकी श्वास-श्वास से, रोयें-रोयें से, प्राणों के कण-कण से एक संगीत, एक गीत, एक नृत्य, एक आह्लाद, एक सुगंध, एक आलोक, एक अमृत की प्रतिपल वर्षा होती रहती है। और समस्त अस्तित्व उससे नहा उठता है। इस संगीत, इस गीत, इस नृत्य को कोई प्रेम कहता है, कोई आनंद कहता है और कोई मुक्ति कहता है। लेकिन, वे सब एक ही सत्य को दिये गये अलग-अलग नाम हैं।

ऐसे ही एक व्यक्ति हैं—भगवान् रजनीश। जो मिट गये हैं, शून्य हो गये हैं, जो अस्तित्व व अनस्तित्व के साथ एक हो गये हैं। जिनकी श्वास-श्वास अंतरिक्ष की श्वास हो गयी है। जिनके हृदय की धड़कनें चाँद-तारों की धड़कनों के साथ एक हो गयी हैं। जिनकी आँखों में सूरज-चाँद-सितारों की रोशनी देखी जा सकती है। जिनकी मुस्कराहटों में समस्त पृथ्वी के फूलों की सुगंध पायी जा सकती है। जिनकी वाणी में पक्षियों के प्रातः-गीतों की निर्दोषता व ताजगी है। और जिनका सारा व्यक्तित्व ही एक कविता, एक नृत्य व एक उत्सव हो गया है।

इस नृत्यमय, संगीतमय, सुगंधमय, आलोकमय व्यक्तित्व से प्रतिपल निकलने वाली प्रेम की, करुणा की लहरों के साथ जब लोगों की जिज्ञासा व मुमुक्षा का संयोग होता है, तब प्रवचनों के रूप में उनसे ज्ञान-गंगा बह उठती है।

उनके प्रवचनों में जीवन के, जगत् के, साधना के, उपासना के विविध रूपों व रंगों का स्पर्श है। उनमें पाताल की गहराइयाँ हैं और विराट् अंतरिक्ष की ऊँचाइयाँ हैं। देश व काल की सीमाओं के अतिक्रमण के बाद जो महाशून्य और निःशब्द की अनुभूति शेष रह जाती है उसे शब्दों में, इशारों में, मुद्राओं में व्यक्त करने का सफल-असफल प्रयास भी उनके प्रवचनों में रहता है।

उनके प्रवचन सूत्रवत् हैं, सीधे हैं, हृदय-स्पर्शी हैं, मीठे हैं, तीखे हैं और साथ ही पूरे व्यक्तित्व को झकझोरने व जगाने वाले भी हैं। **उनके प्रवचनों और ध्यान के प्रयोगों से व्यक्ति की निद्रा, प्रमाद व मूर्च्छा टूटती है और वह अन्तः व बाह्य रूपान्तरण, जागरण और क्रांति में संलग्न हो जाता है।** ●

अन्तर्वीणा की कुछ लहरें

[एक प्रस्तावना]

जीवन के सत्य को, रहस्य को, स्रोत को, सार्थकता को, जिन्होंने भी जाना और जिया है, उनका व्यक्तित्व बन जाता है—एक संगीत, एक आलोक, एक अमृत।

और फिर ऐसे व्यक्ति के अस्तित्व-मात्र से प्रेम की किरणें बिखरती हैं—आनंद के झरने फूटते हैं—दिव्य-संगीत की लहरियाँ फैलती हैं—और समग्र प्राण आह्लाद से नाच उठते हैं।

और यह प्रत्येक व्यक्ति की संभावना है कि उसके जीवन में प्रेम के फूल खिलें—मुक्ति की सुवास उठे—निर्वाण का आलोक उतरे—और प्राणों से एक दिव्य-संगीत व पुलक विकीर्ण हो।

लेकिन, क्यों मनुष्य एक संताप, एक पीड़ा, एक उदासी, एक रिक्तता और अर्थहीनता मात्र रह गया है ?

क्या है कारण ?

कहाँ है गलती ?

क्यों हो गया है ऐसा ?

मूल में कारण यह है कि मनुष्य के जीवन से समता खो गयी है, सामञ्जस्य खो गया है, संतुलन टूट गया है।

और जीवन है एक वीणा की भाँति।

जिसके तार यदि अधिक कसे हों तो भी संगीत नष्ट हो जाता है।

और यदि तार अधिक ढीले हों तो भी संगीत खो जाता है।

चाहिए मध्य का संतुलन।

न तार कसे हों, न तार ढीले हों।

इसी समता में रहस्य है जीवन-संगीत का।

और जो व्यक्ति जीवन में इस समता को—स्वर्ण-मध्य (Golden Mean) को साध लेता है, उसका ही जीवन एक कृतार्थता बन पाता है।

और इस 'जीवन-संगीत' को, 'निर्विचार-शून्य' को, 'निर्भाव की समता' को और 'अ-दिशा में ठहराव' को अपने में जन्म देने की कीमिया है–ध्यान में प्रवेश।

ध्यान ही वह द्वार है जो संगीतमय, आलोकमय, आनंदमय अन्तर्जगत में ले जाता है।

अतः यदि जीवन को बनाना हो एक संगीत, एक गीत, एक नृत्य और एक उत्सव तो उतरें ध्यान में।

छलाँग लगायें ध्यान में।
डूबें ध्यान में--प्रार्थना में--समर्पण में।
इसी आमंत्रण के साथ,
इसी आह्वान के साथ,
इसी पुकार के साथ--
भगवानश्री की अमृत-लेखनी से उद्भूत हुए हैं प्रस्तुत पत्र।

भगवानश्री के प्रथम १२० अमृत-पत्रों का संकलन है--'क्रांति-बीज', दूसरे १०० पत्रों का संकलन है--'पथ के प्रदीप', तीसरे १५० पत्रों का संकलन है--'प्रेम के फूल'।

और अब प्रस्तुत है चौथा पत्र-संकलन--'अन्तर्वीणा'।

आगामी तीन संकलन होंगे--'ढाई आखर प्रेम का', 'पद घुंघरु बाँध', और 'घूंघट के पट खोल'।

प्रस्तुत पत्र साधकों और सत्य के प्यासों को व्यक्तिगत तौर पर लिखे गये हैं।
इसलिए, वे आपके अपने भी सिद्ध होंगे।
ये पत्र आपके हृदय को गुदगुदा जावेंगे।
प्राणों की अन्तर्वीणा को छेड़ जायेंगे।
वे आपमें भी आनंद-अश्रु और प्रेम की सिहरनें पैदा कर जावेंगे।
इन्हें पढ़कर आपके भीतर भी बहुत-कुछ जग जायेगा।
और आपकी चेतना किसी अन्तर्यात्रा पर निकल पड़ेगी।

भगवान्श्री के पत्रों के संकलन विश्व-साहित्य में ऐतिहासिक (Classic) स्थान बना जायेंगे, ऐसा स्पष्ट अनुभव होता है। इस आश्वासन के साथ ही प्रस्तुत है: भगवान्श्री की--'अन्तर्वीणा'।

ए-१, वुडलेंड्स,
पेडर रोड, बम्बई-२६

--योग चिन्मय के प्रणाम
२९ जनवरी, १९७१

अन्तःशीर्षक अनुक्रम

--:o:--

अन्तर्वीणा

[भगवान्श्री रजनीश के १५० अमृत-पत्रों का संकलन]

१ / आनंद है भीतर

प्रिय बहिन,

प्रणाम। मैं परसों दिल्ली से लौटा तो आपका पत्र मिला है। यह जानकर प्रसन्न हूँ कि आपको आनंद और संतोष का अनुभव हो रहा है। आनंद भीतर है। उसकी खोज बाहर करते हैं, इससे वह नहीं मिलता है। **एक बार भीतर की यात्रा प्रारंभ हो जावे तो फिर निरंतर आनंद के नये नये स्रोत खुलते चले जाते हैं।** वह राज्य जो भीतर है वहाँ न दुख है, न पीड़ा है, न मृत्यु है। उस अमृत में पहुँच-कर एक नया जन्म हो जाता है। और वहाँ जो दर्शन होता है उससे सब ग्रंथियाँ कट जाती हैं। इस मुक्त स्थिति को उपलब्ध कर लेना ही जीवन का लक्ष्य है।

यह स्थिति 'स्व' और 'पर' को गिरा देती है। केवल सत्ता रह जाती है : सीमा और विशेषण-शून्य। निराकार और अरूप। इसके पूर्व जो था, वह **अहं-सत्ता** थी, अब जो होता है वह **ब्रह्म-सत्ता** है। यह पाया कि सब पाया। यह जाना कि सब जाना। इसमें होते ही हिंसा और घृणा, दुःख और पीड़ा, मृत्यु और अँधेरा सब गिर जाता है। जो शेष बचता है वह सत्-चित्-आनंद है। इस सत्-चित्-आनंद को पा सको, यही कामना है।

रजनीश के प्रणाम

८ मार्च १९६३ (प्रभात)

[प्रति : सुश्री जया शाह, बम्बई]

२ / धैर्य साधना का प्राण है

प्रिय बहिन,

सत्य प्रत्येक क्षण, प्रत्येक घटना से प्रकट होता है। उसकी अभिव्यक्ति नित्य हो रही है।

केवल देखने को आँख चाहिए, प्रकाश सदैव उपस्थित है।

एक पौधा वर्ष भर पहिले रोपा था। अब उसमें फूल आने शुरू हुए हैं। एक वर्ष की प्रतीक्षा है तब कहीं फल है।

ऐसा ही आत्मिक जीवन के संबंध में भी है। प्रार्थना करो और प्रतीक्षा करो--बीज बोओ और फूलों के आने की राह देखो।

धैर्य साधना का प्राण है।

कुछ भी समय के पूर्व नहीं हो सकता है। प्रत्येक विकास समय लेता है और वे धन्य हैं जो धैर्य से बाट जोह सकते हैं।

आपका पत्र मिला है। आशा-निराशा के बीच मार्ग बनाते चल रही हैं: यह जानकर मन को बहुत खुशी होती है। जीवन-पथ बहुत टेढ़ा-मेढ़ा है। और यह अच्छा ही है। इससे पुरुषार्थ को चुनौती है और जीत का आनंद है।

केवल वे ही हारते हैं जो चलते ही नहीं हैं। जो चल पड़ा है वह तो आधा जीत ही गया है। जो हारें बीच में आती हैं; वे हारें नहीं हैं। वे तो पृष्ठभूमि हैं जिसमें विजय पूरी तरह खिलकर उभरती है।

ईश्वर प्रतिक्षण साथ है, इसलिए गन्तव्य को पाना निश्चित है। मैं आनंद में हूँ। क्रांति प्रणाम भेज रही है।

रजनीश के प्रणाम

२८ मार्च, १९६३

[प्रति : सुश्री जया शाह, बम्बई]

३ / मनुष्य धर्म के बिना नहीं जी सकता है

प्रिय जया बहिन,

प्रणाम। मैं आनंद में हूँ। आपका पत्र मिले देर हुई। मैं बीच में बाहर था, इसलिए उत्तर में विलम्ब हुआ है। इंदौर और शाजापुर बोलकर लौटा हूँ। एक सत्य के दर्शन रोज-रोज हो रहे हैं कि **मनुष्य धर्म के बिना नहीं जी सकता है।** धर्म के अभाव में उनमें कुछ खाली और रिक्त छूट जाता है। **यह रिक्तता पीड़ा देने लगती है** और फिर इसे भरने का कोई मार्ग नहीं दीखता है। ऐसी एक स्थिति आधुनिक मनुष्य की है। इससे मैं निराश नहीं हूँ, क्योंकि इसमें ही शायद मनुष्य की रक्षा और भविष्य की एकमात्र आशा है। इस पीड़ा से ही उस प्यास का जन्म हो रहा है जो यदि सम्यक् दिशा दी जा सकी तो विश्व में धर्म के पुनरुत्थान में परिणत हो सकती है।

अँधेरी रात के बाद जैसे प्रभात का जन्म होता है, ऐसे ही **मनुष्य की अन्तरात्मा भी एक नये प्रभात के करीब है।** इस होने वाले प्रभात की खबर प्रत्येक को दे देनी है, क्योंकि यह प्रभात प्रत्येक के भीतर होना है। और इस प्रभात को लाने के लिए प्रत्येक को प्रयत्नशील भी होना है। हम सब इसे लायेंगे तो ही यह आ सकता है। यह अपने से नहीं आ सकता है। चेतना का जन्म प्रयास और प्रतीक्षा माँगता है। और प्रसव की पीड़ा भी। **यह प्रयास, प्रसवपीड़ा और प्रतीक्षा दुखद नहीं होती है क्योंकि उसके माध्यम से ही क्षुद्र विराट् को पाता है।** विराट् को अपने में जन्म देने से बड़ा आनंद और कुछ नहीं है।

यह जानकर प्रसन्न हूँ कि आप जीवन-साध्य की ओर गतिवान् हैं। चलते भर हम चलें, पहुँचना तो निश्चित है।

ईश्वर साथ दे, यही कामना है।

रजनीश के प्रणाम

१५ अप्रैल, १९६३

[प्रति : सुश्री जया शाह, बम्बई]

४ / जो छीना नहीं जा सकता है, वही केवल आत्म-धन है

प्रिय जया बहिन,

स्नेह। आपका पत्र मिला है। बहुत खुशी हुई। शांति और आनंद की नयी गहराइयाँ छू रही हैं, यह जानकर कितनी प्रसन्नता होती है।

जीवन के यात्रा-पथ पर उन गहराइयों के अतिरिक्त और कुछ भी पाने योग्य नहीं है। जब सब खो जाता है, तब भी वह संपदा साथ रहती है। **इसलिए, वस्तुतः वही संपदा है। और जिनके पास सब-कुछ है, लेकिन वह नहीं है, वे समृद्धि में भी दरिद्र हैं।**

समृद्धि में दरिद्र और दरिद्रता में समृद्ध होना, इसलिए ही, संभव हो जाता है।

जीवन की सतह पर समृद्धि मिल जाती है, लेकिन दरिद्रता नहीं मिटती है। वह समृद्धि दरिद्रता के मिटने का धोखा देती है, लेकिन दरिद्रता मिटती नहीं, केवल छिप जाती है। और यह आत्मवंचना अंत में बहुत मँहगी पड़ती है, **क्योंकि वह जीवन जो कि वास्तविक संपदा के पाने का अवसर बन सकता था, उसके धोखे में व्यर्थ ही व्यय हो जाता है।**

जीवन की सतह पर जो समृद्धि है, उससे सचेत होना बहुत आवश्यक होता है, क्योंकि जो उसके भ्रम से जागते हैं, वे ही जीवन के केन्द्र पर जो धन छिपा है, उसकी खोज में लगते हैं। उस धन की उपलब्धि दरिद्रता को नष्ट ही कर देती है, **क्योंकि उस धन को फिर छीना नहीं जा सकता है।**

और, जो नहीं छीना जा सकता है, वही केवल अपना है, वही आत्मधन है।

और, जो नहीं छीना जा सकता है, वह दिया भी नहीं जा सकता है, क्योंकि जो दिया जा सकता है, वह छीना भी जा सकता है।

और, जो नहीं छीना जा सकता है, उसे पाया भी नहीं जा सकता है, क्योंकि जो पाया जा सकता है, वह खोया भी जा सकता है।

वह तो है, वह तो नित्य उपस्थित है, केवल उसे जानना मात्र होता है। वस्तुतः उसे जान लेना ही उसे पा लेना है।

जीवन प्रत्येक चरण उसी ज्ञान संपदा की ओर ले चले, यही मेरी कामना है। मैं आनंद में हूँ। वहाँ सब प्रियजनों को मेरा प्रेम कहें। सुशीला जी को स्नेह।

रजनीश के प्रणाम
२० मई, १९६४

[प्रति : सुश्री जया शाह, बम्बई]

५ / देखना भर आ जाये—वह तो मौजूद ही है

प्रिय चिदात्मन्,

मैं आपके अत्यन्त प्रीतिपूर्ण पत्र को पाकर आनंदित हुआ हूँ। आपके जीवन की लौ निर्धूम होकर सत्य की ओर बढ़े यही मेरी कामना है। **प्रभु को पाने के लिए जीवन को एक प्रज्ज्वलित अग्नि बनाना होता है।** सतत उस ओर ध्यान रहे। सोते-जागते, श्वांस-श्वांस में वही आकांक्षा और प्यास, वही स्मरण, उसकी ही ओर दृष्टि बनी रहे, तो कुछ और नहीं करना होता है। **प्यास ही, केवल प्यास ही उसे पा लेने के लिए पर्याप्त है।**

सागर तो कितना निकट है, पर हम प्यासे ही नहीं हैं ?

उसके द्वार तो कितने हाथ के पास हैं, पर हम खटखटायें तो ?

देखना भर आ जाये—वह तो मौजूद ही है। आँखें अन्य से भरी हैं! चित्त व्यर्थ से घिरा है। इससे जो है, वह दीख नहीं पाता है।

हृदय 'पर' से आच्छादित है, इसलिए 'स्व' का विस्मरण हो गया है।

इस आच्छादन को हटाना है: स्वच्छ, निर्मल झील के वक्ष पर जम गयी काई को, कचरे को थोड़ा हटाना है। और, तब दीखता है कि कुछ कभी खोया तो था ही नहीं, खोया जा सकता ही नहीं है। मैं निरंतर सत्य में, सत्ता में विराजमान हूँ। मैं वहीं हूँ : तत्वमसि श्वेतकेतु।

जागें और स्मरण से भरें। समस्त क्रियाओं में उसका स्मरण रखें जो कि उन्हें देख रहा है। सर्व विचारों में उस पर दृष्टि रहे जो उनके पीछे है।

वहाँ जागना है, जहाँ न कोई क्रिया है, न कोई विचार है, न कोई स्पन्दन है: वहीं है वह जो क्षेत्र और काल के अतीत है।

और, वहीं है शांति, आनंद और निर्वाण, और, वहीं है वह जिसे पाकर फिर और कुछ पाने को नहीं रह जाता है।

मेरे सब प्रियजनों से मेरा प्रेम कहना।

यात्रा से :
औरंगाबाद

रजनीश के प्रणाम
१७ जनवरी, १९६४

[प्रति : श्री जीवन सिंह सुराणा, सुराणा निवास, इंदौर–३ (म० प्र०)]

६ / आँख बन्द है—चित्त-वृत्तियों के धुएँ से

चिदात्मन्,

प्रेम। आपका अत्यन्त प्रीति और सत्य के लिए प्यास से भरा पत्र मिला है। मैं आनंदित हुआ। जहाँ इतनी प्यास होती है, वहाँ प्राप्ति भी दूर नहीं है। प्यास हो तो पथ बन जाता है।

सत्य तो निकट है और प्रकाश की भाँति द्वार पर ही खड़ा है। वह नहीं, समस्या हमारे पास आँख न होने की है और उस आँख का भी अभाव नहीं है। वह भी है. पर बन्द है।

इस आँख को खोला जा सकता है। संकल्प और सतत साधना का श्रम उसे खोल सकता है।

विचार से, मन से, चित्तवृत्तियों के धुएँ से आँख बन्द है। निर्विचार चैतन्य में वह खुलती है और सारा जीवन आलोक से भर जाता है।

यही मैं लिखता हूँ। निर्विचार की निर्दोष स्थिति सिखाता हूँ। मेरी और कोई शिक्षा नहीं है। आँख खुली हो तो शेष सब यह खुली आँख सिखा देती है।

आँख को खोलने के इस प्रयोग के लिए अभी १३, १४ और १५ फरवरी को महाबलेश्वर (पूना) में २०० मित्र मिल रहे हैं। आप आ सकें तो अच्छा है। १२ फरवरी को संध्या तक महाबलेश्वर पहुँच जाना है।

रजनीश के प्रणाम
१७ जनवरी, १९६५

[प्रति : श्री रजनीकांत भंसाली, जयपुर (राज०)]

७ / मैं आपको तट पर खड़ा पा रहा हूँ

मेरे प्रिय,

प्रेम। आपका पत्र मिला है। उसे पाकर आनंदित हुआ हूँ। उस दिन भी आपसे मिलकर अपार हर्ष हुआ था।

सत्य के लिए जैसी आपकी आकांक्षा और प्यास है, वह **सौभाग्य से ही होती है।** वह हो, तो एक न एक दिन साधना के सागर में कूदना हो ही जाता है। **मैं आपको तट पर खड़ा पा रहा हूँ--बस, एक छलांग की ही आवश्यकता है।**

●

साधना को जितना सहज बनाया जा सके--वह जितनी 'प्रयत्न के तनाव से शून्य' हो, उतनी ही शीघ्रता से उसमें गति होती है।

अभ्यास तो होगा ही, लेकिन, वह अभ्यास तनाव और व्यस्तता नहीं बनना चाहिए, इस भाव को ही मैंने **'अनभ्यास के द्वारा अभ्यास'** कहा है।

सत्य को पाने में जो अधैर्य और अशांति होती है, उसे ही तनाव--प्रयत्न का तनाव समझना चाहिए।

अनंत धैर्य और शांति और प्रतीक्षा हो तो प्रयत्न का तनाव विलीन हो जाता है।

फिर जैसे वृक्षों में फूल सहज ही खिलते हैं, वैसे ही साधना में अनायास और अनिरीक्षित ही क्रमशः गति होती जाती है।

●

वहाँ सभी को मेरा प्रेम कहें।

रजनीश के प्रणाम

५ अप्रैल, १९६५

[प्रति : श्री मथुराप्रसाद मिश्र, पटना (बिहार)]

८ / बस, निर्विचार चेतना को साधें

प्रिय सुशीला जी,

प्रेम। आपका पहला पत्र यथासमय मिल गया था। लेकिन, मैं सौराष्ट्र के दौरे पर चला गया, इसलिए उत्तर नहीं दे सका। आते ही आपका दूसरा पत्र मिला है। आपकी इच्छा है तो मैं उधर आ सकूँगा। अक्तूबर के शिविर में आप इधर आ ही रही हैं, तभी उस संबंध में विचार कर लेंगे। **किसी को मुझसे किसी प्रकार की सहायता मिल सके तो मैं कहीं भी आने को तैयार हूँ। अब तो यही मेरा आनंद है।**

आपने अपने चित्त की जो दशा लिखी है, उससे बहुत प्रसन्नता होती है। प्रगति ठीक दिशा में है। **मुद्राओं के कारण चिंतित न हों।** उनसे लाभ ही होगा और फिर वे क्रमशः विलीन हो जावेंगी। **आप तो बस निर्विचार चेतना को साधें, शेष सब अपने आप छाया की भाँति अनुगमन करता है।**

चित्त शांत हो तो जो भी होता है, सब शुभ है।

सामान्यतः जीवन और कार्यों के प्रति जो **निराशा** मालूम होती है, वह भी **संक्रमणकालीन है।** वह भी चली जावेगी और तब जो सेवा फलित होती है, वही वास्तविक सेवा है। इन सब बातों पर जब आप मिलती हैं, तभी विस्तार से विचार कर सकेंगे। इतना स्मरण रखें कि जो भी हो रहा है, वह ठीक है और उसके परिणाम में मंगल ही होगा।

मेरे प्रेम को स्वीकार करें। प्रभु प्रकाश दे, यही कामना है।

रजनीश के प्रणाम

१० अगस्त, १९६५

[प्रति : सुश्री सुशीला सिन्हा, बृजकिशोर पथ, पटना-१]

९ / विचार को छोड़ें और स्वयं में उतरें

मेरे प्रिय आत्मन्,

प्रेम। आपका पत्र मिला है।

ध्यान की साधना में यदि क्रमशः अमूर्च्छा, आत्मज्ञान और सजगता विकसित होती जावे तो मानना चाहिए कि हम चित्त के सम्मोहन-घेरे से बाहर हो रहे हैं।

और यदि इसके विपरीत मूर्च्छा और प्रमाद बढ़ता हो तो निश्चित मानना चाहिए कि चित्त की निद्रा और गहरी हो रही है।

लेकिन, स्वयं प्रयोग किये बिना कुछ भी अनुभव नहीं हो सकता है।

विचार ही न करते रहें। **विचार को छोड़ें और स्वयं में उतरें।**

विचार तो किनारा ही है—जीवन-शक्ति की धारा तो निर्विचार ध्यान में ही है।

कबीर ने कहा है :

'जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बोरी खोजन गयी, रही किनारे बैठ।

रजनीश के प्रणाम

६-१०-१९६५

[प्रति : श्री मथुराप्रसाद मिश्र, पटना]

१० / हृदय की प्यास और पीड़ा से साधना का जन्म

मेरे प्रिय,

प्रेम। आपका पत्र मिले बहुत देर हो गयी है। मैं इस बीच निरंतर प्रवास में था, इसलिए दो शब्द भी प्रत्युत्तर में नहीं लिख सका। वैसे मेरी प्रार्थनाएँ तो सदा ही आपके साथ हैं।

मैं आपके हृदय की प्यास और पीड़ा को जानकर आनंदित होता हूँ, क्योंकि वही तो बीज है जिससे कि साधना का जन्म होता है।

जीवन पर शांत और सहज भाव से प्रयोग करते चलें। फल तो अवश्य ही आता है।

स्मरण रखें कि कोई भी भूमि ऐसी नहीं है कि जिसके भीतर जलस्रोत न हो और कोई भी आत्मा ऐसी नहीं है जिसके भीतर कि परमात्मा न हो। वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम

१८-१२-१९६५

[प्रति : श्री रजनीकांत भंसाली, अतिरिक्त व्यवहार-न्यायाधीश, सी-२१२, मनुभाई मार्ग, तिलक नगर, जयपुर]

११ / सत्ता की, होने की प्राणों की पूर्णानुभूति ही सत्य है

प्रिय सुशीला,

तुम्हारा पत्र। मैं बाहर था। परसों ही लौटा हूँ। विश्वविद्यालय से मुक्ति ले ली है, इसलिए **अब तो यात्रा ही जीवन है।**

● सत्य क्या है? **सत्ता की, होने की प्राणों की पूर्णानुभूति ही सत्य है।** 'होने' की अनुभूति जितनी मूर्च्छित है, जीवन उतना ही असत्य है। 'मैं' हूँ—इसे खूब गहरी प्रगाढ़ता से प्रतिक्षण अनुभव करो——स्वाँस स्वाँस उससे भर जावे। अंततः 'मैं' न बचे और 'हूँ' ही शेष रहे। उस क्षण ही 'जो है', उसे जाना और जिया जाता है।

● क्या मौन में संवाद संभव है? **वस्तुतः तो मौन में ही संवाद संभव है।** शब्द कहते कम, रोकते ज्यादा हैं। बहुत गहरे में सब संयुक्त है। मौन में उसी संयुक्तता के तल पर भावों का संक्रमण हो जाता है। शब्द शून्याभिव्यक्ति के बहुत असमर्थ पूरक हैं। **सत्य तो शब्दों में कहा ही नहीं जा सकता। उसे तो मौन अंतर्नाद से ही प्रकट किया जा सकता है।**

और तुमने जो सलाहें देनी शुरू की हैं, उनसे बहुत आनंदित हूँ। सदा ऐसी ही सलाहें देती रहना। संसार के संबंध में मैं कुछ भी तो नहीं जानता हूँ! इन सलाहों में छिपी मेरे लिए तुम्हारी चिन्ता और प्रेम में मैं बहुत अभिभूत हो जाता हूँ।

रजनीश के प्रणाम

५-८-१९६६

[प्रति : सुश्री सुशीला सिन्हा, ब्रजकिशोर पथ, पटना -१]

१२ / शांत मन में अन्तर्दृष्टि का जागरण

प्रिय सुशीला जी,

प्रेम। आपका पत्र मिला है।

आपकी साधना और तत्संबंध में चिंतन से प्रसन्न हूँ। देश की वर्तमान स्थिति से चिन्ता होना स्वाभाविक है। लेकिन, चिन्ता जितनी ज्यादा हो चिन्तन उतना ही असंभव हो जाता है। चिन्ता और चिन्तन विरोधी दिशाएँ हैं। **मन को शांत रखें तो जो करने योग्य हो, उसके प्रति अंतर्दृष्टि क्रमशः जाग्रत होने लगती है।** शांत मन सहज ही कर्त्तव्य को करने में संलग्न हो जाता है। फिर, अंतःकरण स्वयं ही पथ और पथ पर प्रकाश दोनों ही बन जाता है। मैं 'क्या करें' इस संबंध में कोई सलाह नहीं देता हूँ। मेरी सलाह तो परिपूर्णतः शांत होने के लिए है। उसके बाद स्वयं से ही आदेश मिलने प्रारंभ हो जाते हैं। ये आदेश सदा अचूक होते हैं और उनमें कोई दूसरा विकल्प, शंका या संदेह की संभावना भी नहीं होती। **विचार से नहीं, वरन् अंतर्दृष्टि से जीने के लिए ही मेरी सलाह है।**

ध्यान में अधिक देर बैठना स्वास्थ्य के कारण संभव न हो तो लेटकर ही ध्यान करें। प्रश्न बैठने या लेटने का बिलकुल भी नहीं है। असली प्रश्न तो चित्त-स्थिति का है। **शरीर से नहीं, साधना का कार्य मूलतः तो मन से ही संबंधित है।**

शिविर तो अभी नहीं हो रहा है। अब देखना है कि कब आपको निकट से सहयोगी बन सकूँ? मेरे प्रेम को सदा अपने साथ अनुभव करें और वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम

१८-९-१९६६

[प्रति : सुश्री सुशीला सिन्हा, ब्रजकिशोर पथ, पटना-१]

१३ / तीव्र अभीप्सा—सत्य के लिए, शांति के लिए, मुक्ति के लिए

प्यारी शिरीष,

प्रेम । तेरा पत्र पाकर अत्यन्त आनन्दित हुआ हूँ । सत्य के लिए, शांति के लिए, मुक्ति के लिए, तेरी कितनी तीव्र अभीप्सा है ? उस अभीप्सा को अनुभव करता हूँ तो लगता है कि मैं तेरे लिए जो कुछ भी कर सकूँ, वह थोड़ा ही होगा। फिर भी मैं सामर्थ्य भर तेरी सहायता करना चाहता हूँ । क्यों करना चाहता हूँ? शायद **न करना मेरे वश में ही नहीं है। परमात्मा का जो आदेश है, उसे ही करना होगा** । और जब तुझे तैयार देखता हूँ, तो आनन्दित होता हूँ । वह घड़ी निरंतर ही निकट आ रही है, जब मैं उस दिशा में इंगित कर सकूँ जो कि तेरी नियति (Destiny) है ।

श्री पै को मेरे प्रणाम ।

हाँ तू अपने संबंध में जो भी लिखना चाहती है, अवश्य लिख । क्या पूना नहीं आ रही है ?

रजनीश के प्रणाम

१–१२–१९६६

[प्रति : सुश्री शिरीष पै, बम्बई]

१४ / निर्विचार-चैतन्य है—जीवनानुभूति का द्वार

मेरे प्रिय,

प्रेम । तुम्हारा पत्र और तुम्हारे प्रश्न मिले हैं ।

मैं मृत्यु के संबंध में जानबूझ कर चुप रहा हूँ ।

क्योंकि मैं जीवन के संबंध में जिज्ञासा जगाना चाहता हूँ ।

मृत्यु के संबंध में जो सोच-विचार करते हैं, वे कहीं भी नहीं पहुँचते हैं । क्योंकि वस्तुतः मरे बिना मृत्यु कैसे जानी जा सकती है ? इसलिए वैसे सोच-विचार का कुल परिणाम या तो यह स्वीकृति होती है कि आत्मा अमर है या यह कि जीवन की समाप्ति पूर्ण समाप्ति ही है और पीछे कुछ शेष नहीं रह जाता है। **ये दोनों ही कोरी मान्यताएँ हैं**। एक मान्यता मृत्यु के भय पर खड़ी है और दूसरी शरीर की समाप्ति पर ।

मैं चाहता हूँ कि व्यक्ति मान्यताओं और विश्वासों में न पड़े ।

क्योंकि वह दिशा ही अनुभव की और ज्ञान की दिशा नहीं है ।

और मृत्यु के संबंध में मान्यता और सिद्धान्तों के अतिरिक्त सोच-विचार से और क्या मिल सकता है ?

विचार कभी भी ज्ञात (Known) के पार नहीं ले जाता है ।

और मृत्यु है अज्ञात ।

इसलिए विचार से उसे नहीं जाना जा सकता है।

मैं तो जीवन की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ ।

जीवन है अभी और यहीं (Here and now) ।

उसमें उतरा जा सकता है ।

मृत्यु तो कभी भी अभी यहीं नहीं है ।

या तो वह भविष्य में है या अतीत में ।

मृत्यु कभी भी वर्तमान में नहीं है ।

क्या यह तथ्य तुम्हारे ध्यान में कभी आया है कि मृत्यु कभी भी वर्तमान में नहीं है ?

लेकिन, **जीवन तो सदा वर्तमान में है ।**

वह न अतीत में है, न भविष्य में ।

वह है तो अभी है। अन्यथा कभी नहीं है।

इसलिए **उसे जाना जा सकता है। क्योंकि उसे दिया जा सकता है।** उसके संबंध में विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

वस्तुतः तो जो उसके संबंध में विचार करेंगे, वे उसे चूक जावेंगे।

क्योंकि विचार की गति भी अतीत और भविष्य में ही होती है। विचार भी वर्तमान में नहीं होता है। विचार भी मृत्यु का सहधर्मा है। अर्थात् वह भी मृत ही है। जीवन का तत्त्व उसमें भी नहीं है।

जीवन्तता सदा वर्तमान है। वह वर्तमान ही है।

उसका रूप है: अभी--बिलकुल अभी (Now)। यहाँ--बिलकुल यहाँ (Here)।

इसलिए **जीवन का विचार नहीं होता। होती है अनुभूति।** अनुभव (Experience) भी नहीं--अनुभूति (Experiencing)। अनुभव अर्थात् जो हो चुका। अनुभूति अर्थात् जो हो रही है।

अनुभव तो बन चुका विचार। क्योंकि वह अतीत हो गया है।

अनुभूति है निर्विचार--निःशब्द--मौन--शून्य।

इसलिए **निर्विचार-चैतन्य** (Thoughtless Awareness) को कहता हूँ मैं **जीवानानुभूति का द्वार।**

और जो जीवन को जान लेता है, वह सब जान लेता है।

वह मृत्यु को भी जान लेता है।

क्योंकि **मृत्यु जीवन को न जानने से पैदा हुआ एक भ्रम मात्र है।**

जीवन को जो नहीं जानता, वह स्वभावतः शरीर को ही स्वयं मान लेता है। और शरीर तो मरता है। शरीर तो मिटता है। उसकी इकाई तो विसर्जित होती है। इससे ही मृत्यु पूर्ण अंत है, यह धारणा पैदा होती है। जो थोड़े साहसी हैं और निर्भय हैं, वे इसी धारणा को स्वीकार करते हैं। और शरीर को ही स्वयं मान लेने की इसी भ्रांति से मृत्यु का भय भी पैदा होता है। और इसी भय से पीड़ित व्यक्ति 'आत्मा अमर है', 'आत्मा अमर है', इसका जाप करने लगते हैं। भयभीत और निर्बल व्यक्ति इस भाँति शरण खोजते हैं। लेकिन ये दोनों धारणाएँ एक ही भ्रम से जन्मती हैं। वे एक ही भ्रांति के दो रूप और दो प्रकार के व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ हैं। लेकिन स्मरण रहे कि दोनों की भ्रांति एक है और दोनों प्रकार से वही भ्रांति मजबूत होती है।

मैं इस भ्रांति को किसी भाँति का बल नहीं देना चाहता हूँ।

यदि मैं कहूँ: आत्मा अमर नहीं है, तो यह असत्य है।

और यदि कहूँ कि आत्मा अमर है तो भी यह भय के लिए एक पलायन बनता है। और जो भयभीत हैं वे कभी सत्य को नहीं जान पाते हैं।

इसलिए मैं कहता हूँ कि मृत्यु अज्ञात है। **जानो जीवन को।** वही जाना जा सकता है। और उसे ही जान लेने पर अमृतत्त्व भी जान लिया जाता है।

जीवन शाश्वत है। उसका न आदि है, न अंत। वह अभिव्यक्त होता है। अनभिव्यक्त होता है। वह एक रूप से दूसरे रूपों में भी गति करता है। रूपांतरण के ये संधि-स्थल ही अज्ञान में मृत्यु-जैसे प्रतीत होते हैं।

लेकिन जो जानता है, उसके लिए मृत्यु गृह-परिवर्तन से ज्यादा नहीं है।

निश्चय ही **पुनर्जन्म** है। लेकिन मेरे लिए वह **सिद्धान्त नहीं है, अनुभूति है।** और मैं दूसरों के लिए भी उसे सिद्धान्त नहीं बनाना चाहता हूँ।

सिद्धान्तों ने सत्य की बुरी तरह हत्या कर दी है।

मैं तो चाहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं जान सके।

यह कार्य कोई दूसरा किसी के लिए नहीं कर सकता है।

लेकिन सिद्धान्तों के द्वारा यही कार्य हो गया प्रतीत होता है।

इससे एक-एक व्यक्ति की निजी खोज कुंठित और जड़ हो गयी है। वह तो बस सिद्धांत और शास्त्र मानकर चुप बैठ गया है। जैसे कि उसे स्वयं न कुछ जानना है, न करना है। यह स्थिति तो बहुत आत्मघाती है।

इसलिए मैं सिद्धान्तों की पुनरुक्ति से मनुष्य की इस हत्या के विराट् समारोह में सम्मिलित नहीं होना चाहता हूँ।

मैं तो सब बँधे-बँधाये सिद्धांतों को अस्त-व्यस्त कर देना चाहता हूँ।

क्योंकि मुझे यही करुणापूर्ण मालूम होता है।

इस भाँति जो असत्य है, वह नष्ट हो जायेगा। और सत्य तो कभी नष्ट नहीं होता है। वह तो खोजने वाले को सदा ही अपनी चिर-नूतनता में उपलब्ध हो जाता है।

•

वहाँ सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
१४-९-१९६८

[प्रति: डा० रामचन्द्र प्रसाद, पटना यूनिवर्सिटी, पटना (बिहार)]

१५ / जिज्ञासा–जीवन की

मेरे प्रिय,

प्रेम । तुम्हारे दो पत्र देर से आकर प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा कर रहे हैं, लेकिन बहुत था व्यस्त, इसलिए विलम्ब के लिए क्षमा माँगता हूँ ।

●

(पत्र : ८-१०-'६८)

प्रश्न १ :

'अवतार', 'तीर्थंकर', 'पैगंबर', जैसी अभिव्यक्तियाँ मनुष्य की असमर्थता की सूचक हैं । इतना निश्चित है कि **कुछ चेतनाएँ उर्ध्वगमन की यात्रा में उस जगह पहुँच जाती हैं, जहाँ उन्हें 'मनुष्य' मात्र कहे जाना सार्थक नहीं रह जाता है।** फिर कुछ तो कहना ही होगा । मनुष्यातीत अवस्थाएँ हैं ।

२ : धर्म की शिक्षा का अर्थ है : ऐसा अवसर देना कि भीतर जो प्रसुप्त है, वह जाग सके । निश्चय ही मार्गदर्शकों की जरूरत होगी । लेकिन वे होंगे––मित्र। गुरु होने की चेष्टा में ही आरोपण प्रारंभ हो जाता है । **मनुष्य को गुरुडम से बचाया जाना आवश्यक है ।**

३ : पहले के लोग भी ऐसे ही थे । कम शिक्षित थे । इसलिए, उनका सब भाँति का शोषण होता था । इस शोषण की सुविधा को ही शोषक उनकी सरलता कहते थे । यह सरलता सरलता कम, बुद्धूपन ही ज्यादा थी । मैं बुद्धूपन का जरा भी समर्थक नहीं हूँ । जो सरलता अज्ञान से आती है, उसका मूल्य कौड़ी भर भी नहीं है । **ज्ञान से आयी सरलता का ही आध्यात्मिक मूल्य है ।** लेकिन संक्रमण में ज्ञान से चालाकी आती है । यह स्वाभाविक है । लेकिन मनुष्य जाति जब ठीक से शिक्षित हो चुकी होगी, तो यह संक्रमणकालीन संकट नष्ट हो जायेगा । और फिर ज्ञान+सरलता की जो स्थिति होगी, वही अपेक्षित है ।

४ : गरीब गरीब है, क्योंकि उसका चिंतन भ्रांत है । **गरीबी भी हमारे गलत जीवन-दर्शन का परिणाम है ।** इसलिए जीवन-दृष्टि की बदलाहट के साथ ही सामाजिक व्यवस्था भी बदलती है । विचार ही व्यवस्थापक हैं । अमरीका अकारण

समृद्ध नहीं है । और भारत अकारण दरिद्र नहीं है । हमारा दर्शन दरिद्रता का दर्शन है (Philosophy of poverty) । उनका दर्शन है, संपन्नता का । इसलिए मैं कहता हूँ कि जब तक हमारा दर्शन नही बदलता है, तब तक दरिद्रता भी नहीं बदलने वाली है ।

●

(पत्र : २३-९-'६८)

प्रश्न १ :

दुःख न शरीर को होता है, न आत्मा को । दुःख होता है दोनों के संघात को । अर्थात् व्यक्ति को । व्यक्ति है दोनों का जोड़ । शरीर पर पड़ता है आघात । आघात भौतिक है । लेकिन अनुभव होता है आत्मा को । अनुभव आत्मिक है । आघात के बिना अनुभव नहीं हो सकता है । अनुभोक्ता के बिना आघात का ज्ञान नहीं हो सकता है । अंधे और लँगड़े ने जैसे आग-लगे जंगल से भागकर प्राण बचाये ––वैसे ही । अलग-अलग दोनों नहीं बच सकते । मिल कर दोनों बचे । 'मिलन' ने बचाया । दोनों के जोड़ ने । ऐसा ही है दुःख का अनुभव ।

२ : तत्त्वज्ञान की रुचि प्रत्येक में है । उसके जागरण के लिए निमित्त कोई भी बन सकता है । लेकिन निमित्त गौण है । बस इतना ही ध्यान रखना है । **शिष्य है प्रमुख । गुरु है गौण ।** गुरुडम इसके विपरीत प्रचार करती है । उससे ही मेरा विरोध है ।

३ : पं० सुखलाल से मेरा मिलन हुआ है । वैसे वे मेरे साहित्य से और व्याख्यानों से परिचित हैं । मेरे व्याख्यानों के बहुत से टेप उन्होंने सुने हैं । उनकी पुस्तक 'दर्शन और चिंतन' का एक हिन्दी भाग मैंने देखा है ।

४ : पश्चिम के विचारकों में अस्तित्ववादियों (Existentialists) से मेरे विचार-सूत्रों की कुछ साम्यता हो सकती है । झेन (Zen) साधकों से भी । सूफी संतों से भी । कृष्णमूर्ति और गुरजिएफ से भी ।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम ।

रजनीश के प्रणाम
७-११-१९६८

[प्रति : डा० रामचन्द्र प्रसाद, पटना युनिवर्सिटी, पटना (बिहार)]

१६ / सब कुछ—स्वयं को भी देनेवाला प्रेम प्रार्थना बन जाता है

प्यारी रोशन,

प्रेम। तेरा पत्र पाकर आनंदित हूँ। यह भी तुझे ज्ञात है कि उस दिन तू मिलने आयी तो चुप क्यों रह गयी थी? लेकिन, **मौन भी बहुत कुछ कहता है। और शायद शब्द जो नहीं कह पाते हैं, वह मौन कह देता है।**

•

प्रेम और विवाह के सम्बन्ध में तूने पूछा है।
प्रेम अपने में पूर्ण है। वह और कुछ भी नहीं चाहता है।
विवाह 'कुछ और' की भी चाह है।
लेकिन पूर्ण प्रेम कहाँ है?
इस पृथ्वी पर कुछ भी पूर्ण नहीं है।
इसलिए प्रेम, विवाह बनना चाहता है।
यह अस्वाभाविक भी नहीं है।
लेकिन उपद्रवपूर्ण तो है ही।
क्योंकि **प्रेम आकाश की मुक्ति है और विवाह पृथ्वी का बंधन है।**

•

प्रेम से जो तृप्त हो सके तो, तो ठीक है।
अन्यथा **विवाह से कौन कब तृप्त हुआ है?**

•

लेकिन, जीवन से भागना कभी मत।
पलायन आत्मघात है।
जीवन को जीना—उसकी सफलताओं में भी और असफलताओं में भी।
हार और जीत—सभी जरूरी हैं।
फूल और कांटे—सभी पर चल कर ही प्रभु के मंदिर तक पहुँचा जाता है।

•

और परमात्मा से कभी भी कुछ मत माँगना। क्योंकि माँग और प्रेम में विरोध है। प्रेम तो बस देता ही है। और जो प्रेम सब दे देता है—स्वयं को भी—वही प्रार्थना बन जाता है।

रजनीश के प्रणाम

२०-६-१९६९ (प्रभात)

पुनश्च : और जब मैं अजमेर आऊँ तो तू भी आ जाना। तेरे प्रश्न ऐसे हैं कि सामने बैठेगी तभी आसानी से उत्तर दे सकूँगा। क्योंकि **तब बिना कहे भी बहुत-कुछ कह दिया जाता है।**

[प्रति : कुमारी रोशन जाल, फीरोज शाह एंड कं०, पंचवटी के पास, उदयपुर]

१७ / स्वतंत्रता का जीवन—प्रेम के आकाश में

प्यारी नीलम,
प्यारे विन्दी,

प्रेम। तुम प्रेम के मंदिर में प्रवेश करोगे और मैं उपस्थित नहीं रह सकूँगा! इससे मन बहुत दुखता है।

लेकिन मेरी शुभकामनाएँ तो वहाँ होंगी ही।

और हवाओं में तुम उनकी उपस्थिति अनुभव करोगे।

तुम्हारा जीवन **प्रेम के आकाश में स्वतंत्रता का जीवन बने,** यही प्रभु से **मेरी कामना है।**

क्योंकि अक्सर प्रेम की आड़ में परतंत्रता आ जाती है और प्रेम मर जाता है।

प्रेम के फूल तो केवल स्वतन्त्रता की क्यारियों में ही खिलते हैं।

इसलिए तुम अपने विवाह को 'विवाह' मत बनने देना।

तुम उसे प्रेम ही रहने देना।

विवाह के नाम पर प्रेम की कितनी कब्रें बन गयी हैं?

एक दूसरे को बाँधना मत—वरन् मुक्त करना।

क्योंकि प्रेम मुक्त करता है।

और जो बाँधता है, वह प्रेम नहीं है।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

२६-६-१९६९

[प्रति : श्री विन्दी और सुश्री नीलम, द्वारा—सुश्री डाली दीदी, २१।३, बन्ड रोड, पूना]

१८ / प्रेम पिघलाता है, मिटाता है

प्यारी डाली,

प्रेम। तेरे पत्र मिले हैं। लेकिन उन्हें केवल पत्र ही तो कहना कठिन है। वस्तुतः तो वे **प्रेम से जन्मी कविताएँ हैं।**

प्रेम से और प्रार्थना से भी। क्योंकि **जहाँ प्रेम है, वहीं प्रार्थना है।** प्रेम की पूर्णता ही प्रार्थना है।

इसीलिए, जिससे प्रेम है, उसमें परमात्मा की झलक मिलने लगती है।

प्रेम वे आँखें दे देता है, जिनसे कि परमात्मा देखा जा सकता है।

प्रेम उसके दर्शन का द्वार है।

और जब समग्र से प्रेम होता है, तो वह समग्र में दिखाई पड़ने लगता है।

लेकिन अंश और अंशी में कोई विरोध नहीं है।

एक से भी प्रेम की गहराई अंततः समग्र पर फैलने लगती है।

क्योंकि **प्रेम व्यक्तियों को पिघला देता है और फिर अव्यक्ति ही शेष रह जाता है।**

प्रेम है सूर्य की भाँति।

व्यक्ति हैं जमी हुई बर्फ की भाँति।

प्रेम का सूर्य बर्फ-पिण्डों को पिघला देता है और फिर जो शेष रह जाता है वह असीम सागर है।

इसलिए **प्रेम की खोज वस्तुतः परमात्मा की ही खोज है।**

मैं जानता हूँ कि तू पिघल रही है।

क्योंकि प्रेम पिघलाता ही है और मिटाता ही है।

क्योंकि वह जन्म भी है और मृत्यु भी है।

उसमें स्व मिटता है और सर्व जन्मता है।

और निश्चय ही मृत्यु में पीड़ा है, और जन्म में भी।

इसलिए प्रेम एक गहरी पीड़ा है—मृत्यु की भी और प्रसव की भी।

लेकिन तुझसे जन्म ले रहे काव्य-संकेत मुझे आश्वस्त करते हैं कि प्रेम की पीड़ा के आनंद का अनुभव प्रारंभ हो गया है ।

जयमाला को प्रेम । सबको प्रेम ।

रजनीश के प्रणाम

३-११-१९६९

[प्रति : सुश्री डाली दीदी, २१।३, बन्ड रोड, पूना (महा०)]

१९ / सीखें–प्रत्येक जगह को अपना घर बनाना

प्यारे सुनील,

प्रेम । तेरा पत्र पाकर अति आनंदित हूँ ।

घर की याद स्वाभाविक है और तब तक सताती है, जब तक कि हम प्रत्येक जगह को अपना घर बनाना न सीख लें ।

और वह कला सीखने जैसी है ।

अब जितने दिन तू वहाँ है, उतने दिन उस जगह को अपना ही घर मानकर रह ।

सारी पृथ्वी हमारा घर है ।

और समस्त जीवन हमारा परिवार है ।

शेष मिलने पर ।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहना ।

रजनीश के प्रणाम

१३–५–१९७०

[प्रति : श्री सुनीलकुमार शाह, द्वारा : श्री ईश्वरभाई एन० शाह, बम्बई]

२० / सदा शुभ को—सुन्दर को खोज

प्यारी भारती,

प्रेम । तेरा पत्र पाकर बहुत आनंदित हूँ ।
जीवन नये-नये अनुभवों का नाम है ।
चित्त जो नये का अनुभव करने में समर्थ है, वही जीवित है ।
इसलिए, परदेश को प्रेम से ले ।
नये को सीख ।
अपरिचित को परिचित बना ।
अज्ञात को जान, पहचान ।
निश्चय ही इसमें तुझे बदलना होगा ।
पुरानी आदतें टूटेंगी ।
तो उन्हें टूटने दे ।
और स्वयं की बदलाहट से भयभीत न हो ।
परिवर्तन सदा शुभ है ।
जड़ता सदा अशुभ ।
और सदा ही अतीत की ओर देखते रहना खतरनाक है ।
क्योंकि उससे भविष्य के सृजन में बाधा पड़ती है ।
पीछे नहीं; जीवन है आगे ।
इसलिए, आगे देख ।
और आगे, और आगे ।
स्मृतियों में नहीं, सपनों में जी ।
और जो भी वहाँ है उसे निंदा से मत देख ।
वह दृष्टि गलत है ।
जहाँ भी रहे, वहाँ सदा शुभ को, सुंदर को खोज ।
और सब जगह, सब लोगों में सुन्दर का वास है ।
बस उसे देखने वाली आँख भर चाहिए ।

और ध्यान रख कि जो हम देखते हैं, वही हम हो जाते हैं ।
शुभ तो शुभ ।
अशुभ तो अशुभ ।
इसलिए, बुरे को मत देख ।
वह भारतीय आदत छोड़ तो अच्छा ।
मेरे जानने में तो बुरी दृष्टि के सिवाय और कुछ भी बुरा नहीं है ।
वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहना ।

रजनीश के प्रणाम

३०-५-१९७०

[प्रति : कुमारी भारती ईश्वरभाई शाह, ५५ हेमिल्टन स्ट्रीट, लंदन, एन० डब्ल्यु०-११]

२१ / जागृत चित्त है द्वार, स्व-सत्ता का

मेरे प्रिय,

प्रेम । तुम्हारे पत्र पाकर आनंदित हूँ ।

धर्म का जन्म से कोई भी सम्बन्ध नहीं है ।

और जो ऐसा संबंध बनाते हैं, वे धर्म को हड्डी-मांस-मज्जा से ज्यादा मूल्यवान् नहीं मानते हैं ।

धर्म शरीर की बात ही नहीं है ।

धर्म है आत्मा का स्वभाव ।

और आत्मा का न जन्म है, न मृत्यु है ।

इसलिए **स्वयं को खोजो, स्वरूप को खोजो, वही धर्म है ।**

और जन्म से बँध जाने वाले बंधनों (जैन, बौद्ध, मुसलमान, ईसाई आदि) से बचो ।

धर्मों के मार्ग में धर्मों से ज्यादा बड़ी बाधा और कोई नहीं है ।

धर्मों को विदा दो, ताकि धर्म आ सके ।

धर्मों के ही नाम हैं, विशेषण हैं ।

धर्म अनाम है ।

जो एक ही है, उसके नाम की आवश्यकता भी नहीं है ।

●

उपवास का अर्थ अनशन नहीं है ।

उपवास का अर्थ है—स्वयं के निकट वास ।

स्वयं के पास रहो—जरूर रहो ।

लेकिन भूखे मरने को उपवास न समझ लेना ।

नहीं तो स्वयं के पास नहीं, भोजन के पास ही रहोगे ।

हाँ—यह हो सकता है कि कभी स्वयं में डूबे होने के कारण भोजन का स्मरण ही न हो—लेकिन वह बात और है ।

ऐसे क्षणों को आयोजित नहीं किया जा सकता है ।

ऐसे क्षण तो आते हैं, अनायास ।

०००००

● संयम साधना नहीं है ।

साधो तो भी उसे साध नहीं सकते हो ।

क्योंकि **संयम** परोक्ष घटना है ।

वह तो **जागृत विवेक की छाया है ।**

जागो और तुम पाओगे कि संयम आ गया है ।

और जागे बिना संयम को लाना चाहो तो संयम के नाम से सिर्फ दमन को ही ले आओगे ।

दमन भोग का शीर्षासन है ।

वह उल्टा हो गया भोग ही है ।

उससे धोखे में मत आना ।

न चाहिए **भोगी चित्त ।**

न चाहिए **दमित चित्त ।**

क्योंकि **वे दोनों ही निद्राएँ हैं ।**

चाहिए जागृत चित्त ।

क्योंकि **जागृत चित्त स्व-सत्ता का द्वार है ।**

००००

● मंदिर जरूर जाओ ।

लेकिन-ईंट-चूने के मंदिरों में मंदिर नहीं है ।

मंदिर है मन में ।

मंदिर है भीतर ।

वहीं जाना मंदिर में जाना है ।

००००

● ज्ञान का समय से वास्ता ही क्या है ?

मोक्ष का युग से नाता ही क्या है ?

ज्ञान है समयातीत (Beyond Time)

मोक्ष है सनातन ।

इसलिए समय और युग उनके लिए बाधाएँ नहीं हैं ।
न कलियुग ।
न पंचमकाल ।
जब बंधन सदा संभव है, तो मुक्ति भी सदा संभव है ।
००००

● और घर के लोग तो बाधा बनेंगे ही ।
बँधे हुए लोग किसी को अनबँधा नहीं देख सकते हैं ।
लेकिन उन पर क्रोध न करना ।
वरन् सदा दया करना ।
वे दया के ही पात्र हैं ।
वे तुम्हें गालियाँ दें तो सहना ।
मूर्ख कहें तो मजा लेना ।
गंभीर भर मत होना ।
उनके कार्यकलापों को खेल ही मानना ।
और जो तुम्हें ठीक लगे, सत्य लगे, उस पर निर्भय बढ़ते रहना ।
धर्म का मार्ग फूलों की सेज नहीं है ।
लेकिन जो काँटों को सहने की सामर्थ्य रखता है, वह अंततः अनंत के फूलों का हकदार भी हो जाता है ।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम ।

रजनीश के प्रणाम

१०-६-१९७०

[प्रति : श्री विजयकुमार वंड, मु० पो०–उदखेड़, तह० मोर्शी, जि० अमरावती (महाराष्ट्र)]

२२ / धर्म को भी प्रत्येक युग में पुनर्जन्म लेना होता है

प्रिय योग भगवती,

प्रेम । धर्म को भी प्रत्येक युग में पुनर्जन्म लेना होता है ।
शरीर––सभी भाँति के शरीर पुराने पड़ जाते हैं और मर जाते हैं ।
संप्रदाय धर्म के मृत शरीर हैं ।
उनकी आत्मा कभी की निकल चुकी है ।
उनकी भाषा तिथि-बाह्य हो गयी है ।
इसलिए ही उनका अब कोई भी संस्पर्श मनुष्य के प्राणों से नहीं होता है ।
न ही उनकी अनुगूंज ही मनुष्य की अंतरात्मा में सुनी जाती है ।

डॉ० जॉन ए० हटन ने एक बार धर्मपुरोहितों की एक सभा में बोलते हुए पूछा था : "धर्म-गुरुओं के उपदेश इतने निर्जीव और निष्प्राण क्यों हो गये हैं ?"

और जब कोई भी उत्तर देने खड़ा नहीं हुआ तो उन्होंने स्वयं ही कहा था : "धर्मोपदेश निष्प्राण हो गये हैं, क्योंकि आप उनमें उन प्रश्नों के उत्तर दे रहे हैं जिन्हें कि कोई भी नहीं पूछ रहा है !"––They are all dull because preachers are trying to answer questions that nobody is asking.

धर्म सनातन है ।
लेकिन, उसका शरीर सदा ही सामयिक होना चाहिए ।
शरीर न सनातन है, न हो सकता है ।
धर्म का शरीर भी नहीं ।

रजनीश के प्रणाम

७-९-१९७०

[प्रति : मा योग भगवती, बम्बई]

२३ / धर्म जीवन का प्राण है

प्रिय योग लक्ष्मी,

प्रेम। राजनीति संप्रदाय-मुक्त हो, यह तो शुभ है।

लेकिन, धर्मशून्य हो, यह शुभ नहीं है।

धर्म जीवन का प्राण है।

राजनीति जीवन की परिधि से ज्यादा नहीं।

और परिधि जैसे केन्द्र को खोकर नहीं हो सकती है, ऐसे ही राजनीति धर्म को खोकर 'राज-नीति' नहीं रह जाती है।

हाँ—'**राज-अनीति' धर्म के अभाव में भी संभव है।**

और, शायद राजनीति वही होकर रह गयी है।

मैंने सुना है कि एक सफल वकील, एक सफल चोर और एक सफल राजनीतिज्ञ एक ही समय और एक ही साथ स्वर्ग पहुँचे। वैसे भी तीनों मित्र थे। और जीवन में बहुत रूपों में एक-दूसरे के साथ रहे थे, इसलिए मृत्यु में भी साथ थे, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

संत पीटर ने उनसे पूछा : "सच-सच बोलना—जीवन में झूठ कितनी बार बोला है?"

चोर ने कहा : "तीन बार महाराज।"

संत पीटर ने उसे दण्डस्वरूप स्वर्ग के तीन चक्कर दौड़कर लगाने को कहा।

वकील ने कहा : "तीन सौ बार महाराज।"

वकील को भी तीन सौ चक्कर लगाकर स्वर्ग में प्रवेश की आज्ञा मिल गयी।

लेकिन, जब संत पीटर राजनीतिज्ञ की ओर मुड़े तो राजनीतिज्ञ नदारद था। पास खड़े द्वारपाल ने बताया कि वे अपनी साइकिल लेने चले गये हैं।

रजनीश के प्रणाम

१०-१०-१९७०

[प्रति : मा योग लक्ष्मी, बम्बई]

२४ / व्यक्तित्व की गूँज प्राणों तक

प्रिय कृष्ण करुणा,

प्रेम। जो हम कहते हैं, लोग उससे नहीं; वरन् जो हम हैं, लोग उससे ही सीखते हैं।

शब्द तो कानों तक ही पहुँचते हैं या बहुत हुआ तो मस्तिष्क तक।

लेकिन, व्यक्तित्व की गूँज प्राणों तक पहुँच जाती है।

फुल्टन शीन प्रवचन देते समय कभी पाण्डुलिपि पर नजर नहीं डालते थे। सारा प्रवचन वे जबानी ही देते थे।

एक बार कुछ मित्रों ने उनसे इसका कारण पूछा, तो उन्होंने कहा : "एक बार एक बूढ़ी स्त्री किसी को प्रवचन पढ़ कर सुनाते हुए देख कर हैरानी से बोल उठी थी कि जब ये खुद अपना प्रवचन याद नहीं रख सकते हैं तो ये कैसे आशा कर सकते हैं कि हम इनका प्रवचन याद रख सकेंगे।"

निश्चय ही जो हम नहीं हैं, उसकी आशा दूसरों से नहीं की जा सकती है।

और, जो हम हैं, उसकी आशा करने की आवश्यकता ही नहीं है; क्योंकि वह तो सहज ही संक्रामक होता है।

रजनीश के प्रणाम

२१-१०-१९७०

[प्रति : मा कृष्ण करुणा, बम्बई]

२५ / सोयें नहीं, जागें

प्रिय योग लक्ष्मी,

प्रेम। तथाकथित जीवन एक निद्रा से ज्यादा नहीं है।

सब-कुछ निद्रा में ही हो रहा है।

अन्यथा जो मनुष्य करता है, वह करना असंभव है।

जागते हुए स्वयं के लिए नर्क निर्मित करना असंभव है।

●

एक सुबह किसी चर्च में उपदेशक ने देखा कि एक व्यक्ति गहरी नींद ले रहा है।

उसे यह बताने को कि वह नींद में है, उपदेशक ने कहा : "जो स्वर्ग जाना चाहते हैं, कृपया वे खड़े हो जावें।"

सोये हुए व्यक्ति को छोड़ कर शेष सभी खड़े हो गये।

जागते हुए नर्क जाना तो असंभव ही है न!

और फिर जब सारे लोग वापिस बैठ गये तो उपदेशक ने थोड़ी तेज आवाज में कहा : "अब कृपया वे खड़े हो जावें जो कि नर्क जाना चाहते हैं।"

सोया हुआ व्यक्ति चौंक कर खड़ा हो गया।

लेकिन यह देखकर कि वह अकेला ही खड़ा हुआ है, उसने उपदेशक से कहा : "श्रद्धेय, मुझे पता नहीं है कि हम किस चीज के लिए मत दे रहे हैं। लेकिन, इतना तो निश्चित है ही कि आप मेरे साथ हैं, क्योंकि हम दोनों के अतिरिक्त और कोई खड़ा हुआ नहीं है। और यह भी साफ जाहिर है कि हम अल्पमत में हैं।"
—I don't know what are we voting on, Reverend! but it looks like you and I are in a minority!"

रजनीश के प्रणाम

१–११–१९७०

[प्रति : मा योग लक्ष्मी, बम्बई]

२६ / जीवन मन का खेल है

प्रिय योग भगवती,

प्रेम। जीवन मन का खेल है।

सुख-दुःख, शांति-अशांति, सभी मन के विस्तार हैं।

एक व्यक्ति को कभी-कभी गर्मी में भी सर्दी लग जाती थी।

चिकित्सक ने जाँच की तो पाया कि शरीर में तो कोई भी दोष नहीं है।

उसने रोगी को सलाह दी : "आप नित्य यह सोचा करें कि आपके सिर पर सूर्य की कड़ी धूप पड़ रही है तो आपको सर्दी में भी गर्मी का अनुभव होगा और आप बिलकुल ठीक हो जायेंगे।"

लेकिन, चार-छह दिन बाद ही उस व्यक्ति की पत्नी ने चिकित्सक को फोन पर अत्यन्त घबड़ायी हुई आवाज में कहा : "आप कृपा करके शीघ्र आइये, मेरे पति सख्त बीमार हो गये हैं।"

चिकित्सक ने पूछा : "क्या हुआ?"

उत्तर मिला : "उन्हें घर में बैठे-बैठे एकाएक लू लग गयी है!"

रजनीश के प्रणाम

७–११–१९७०

[प्रति : मा योग भगवती, बम्बई]

२७ / अति विकृति है, समता मुक्ति है

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम । **'अति' तनाव है ।**

अनति विश्राम है ।

लेकिन, **मानव-मन 'अति' में जीता है ।**

मित्र या शत्रु--तटस्थ कभी नहीं ।

भोगी या त्यागी--तटस्थ कभी नहीं ।

इस ओर या उस ओर--मध्य में कभी नहीं ।

जैसे कि स्वर्ण-मध्य (Golden-mean) को मन जानता ही नहीं है ।

और यही मनुष्य का संताप (Anguish) है ।

यही मनुष्य का नर्क है ।

जब कि स्वर्ग है मध्य में--दो नर्कों के बीच--दो अतियों के बीच ।

स्वर्ग है सम्यक्त्व ।

मुक्ति है समता ।

एक आदमी ने झेन फकीर हिकी से कहा : "मेरी पत्नी अति कंजूस है--घर मेरा नर्क बन गया है--मेरे लिए कुछ करें ।"

हिकी उसकी पत्नी से मिलने गया और उसे अपनी मुट्ठी भींच कर दिखायी ।

सहज ही उस स्त्री ने पूछा : "मतलब ?"

हिकी बोला : "फर्ज़ करो कि मेरी मुट्ठी सदा यों ही रहे तो तुम क्या कहोगी ?"

वह स्त्री हँसी और बोली : "आपका हाथ विकृत हो गया है ।"

तब हिकी ने अपना हाथ उसके चेहरे के आगे ले जाकर पूरा खोल दिया और पूछा : "यदि हमेशा ऐसा रहे तब ?"

उस स्त्री ने पुनः हँसकर कहा : "दूसरी तरह की विकृति ।"

अब हँसने की बारी हिकी की थी ।

वह हँसता रहा और उठ कर चलने को हुआ तो उस स्त्री ने पुनः पूछा : "मतलब ?"

हिकी ने कहा : "अब मुझे कुछ भी नहीं कहना है । यदि तुम इतना समझती हो, तो सब समझती हो । समस्त धर्म-शास्त्र और समस्त ज्ञानी इतने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहते हैं । अति (Extreme) वर्जित है । क्योंकि **अति** (Excess) **विकृति है** । अति स्वभाव नहीं है । और स्वभाव में होना ही धर्म है ।"

हिकी हँसता हुआ चला गया था और वह स्त्री रूपान्तरित हो गयी थी ।

वह स्त्री बुद्धिमान् थी ।

क्योंकि, बुद्धिमान् वही है जो इशारे समझ लेता है ।

लेकिन, इतने बुद्धिमान् लोग जगत् में कितने कम हैं ?

रजनीश के प्रणाम

१०-११-१९७०

[प्रति : स्वामी योग चिन्मय, बम्बई]

२८ / आस्तिकता है जीवन-कला

प्रिय योग भगवती,

प्रेम । आस्तिकता किसी सिद्धांत का नाम नहीं है ।

आस्तिकता थियोलॉजी (Theology) नहीं है ।

आस्तिकता तो जीवन को देखने और जीने का एक ढंग है ।

सौंदर्य देखने और सौन्दर्य जीने का ।

सत्य देखने और सत्य जीने का ।

शिवत्व देखने और शिवत्व जीने का ।

ह्वाइट फील्ड ने एक दिन कहा : "ईश्वर ने जो भी बनाया है, वह पूर्ण है । उसमें किसी प्रकार की कोई खामी नहीं है ।"

इस पर श्रोताओं में से एक कुबड़ा उठ कर बोला : "आपका मेरे बारे में क्या ख्याल है ?"

चर्च में इस प्रश्न से सन्नाटा छा गया ।

"आपके बारे में ख्याल ?" ह्वाइट फील्ड अत्यन्त सहानुभूति से उसे देखते हुए बोले : "मैं समझता हूँ कि ईश्वर ने आपको ऐसा पूर्ण कुबड़ा बनाया है कि मुझे तो कोई खामी नहीं दिखायी देती है ।"

रजनीश के प्रणाम

१५-११-१९७०

[प्रति : मा योग भगवती, बम्बई]

२९ / क्षण ही शाश्वत है

प्रिय योग प्रिया,

प्रेम । प्रतिपल जी ।

जो काम हाथ आये उसे कर ।

कल पर कुछ न छोड़ ।

स्थगन की प्रवृत्ति आत्मघाती है ।

कल है भी कहाँ ?

जो है, आज है ।

जो है, अभी है ।

उसे जी लेना है ।

क्षण को जी लेना है ।

क्षण ही सत्य है ।

और **जो क्षण को जीने में समर्थ हो जाता है, वह शाश्वत को उपलब्ध हो जाता है ।**

जिया क्षण शाश्वत बन जाता है ।

अन-जियी शाश्वतता भी क्षणभंगुर ही रह जाती है ।

रजनीश के प्रणाम

१२-११-१९७०

[प्रति : मा योग प्रिया, संस्कार-तीर्थ, आजोल, जिला-महेसाणा, गुजरात]

३० / जीवन के तथ्यों का आलिंगन

प्रिय योग प्रेम,

प्रेम । भय छोड़ ।
क्योंकि, भय को पकड़ा कि वह बढ़ा ।
उसे पकड़ना ही उसे पानी देना है ।
लेकिन, भय छोड़ने का अर्थ उससे लड़ना नहीं है ।
लड़ना भी उसे पकड़ना ही है ।
भय है--ऐसा जान ।
उससे भाग मत ।
पलायन मत कर ।
जीवन में भय है ।
असुरक्षा है ।
मृत्यु है ।
ऐसा जान ।
ऐसा है ।
यह सब जीवन का तथ्य है ।
भागेंगे कहाँ ?
बचेंगे कैसे ?
जीवन ऐसा है ही ।
इसकी स्वीकृति--इसका सहज अंगीकार ही भय से मुक्ति है ।
भय स्वीकृत है तो फिर भय कहाँ है ?
मृत्यु स्वीकृत है तो फिर मृत्यु कहाँ है ?
असुरक्षा स्वीकृत है तो फिर असुरक्षा कहाँ है ?
जीवन की समग्रता के स्वीकार को ही मैं संन्यास कहता हूँ ।

रजनीश के प्रणाम
१२-११-१९७०

[प्रति : मा योग प्रेम, विश्वनीड़, संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात]

३१ / कांटों में ही फूल छिपे हैं

प्रिय आनंद मूर्ति,

प्रेम । संकल्प के मार्ग में आती बाधाओं को प्रभु-प्रसाद समझना, क्योंकि उनके बिना संकल्प के प्रगाढ़ होने का और कोई उपाय नहीं है ।

राह के पत्थर प्रज्ञावान् के लिए, अवरोध नहीं, सीढ़ियाँ ही सिद्ध होते हैं ।
अंततः, सब-कुछ स्वयं पर ही निर्भर है ।
अमृत जहर हो सकता है, और जहर अमृत हो सकता है ।
फूल काँटों में छिपे हैं ।
काँटों को देख कर जो भाग जाता है, वह व्यर्थ ही फूलों से वंचित रह जाता है ।
हीरे खदानों में दबे हैं ।
उनकी खोज में पहले तो कंकड़-पत्थर ही हाथ आते हैं ।
लेकिन, उनसे निराश होना हीरों को सदा के लिए ही खोना है ।
एक-एक पल कीमती है ।
समय लौट कर नहीं आता है ।
और खोये अवसर खोया जीवन बन जाते हैं ।
अँधेरा जब घना हो तो जानना कि सूर्योदय निकट है ।

रजनीश के प्रणाम
१७-११-१९७०

[प्रति : स्वामी आनंदमूर्ति, द्वारा--
श्री कृष्णवंदन रिंगवाला, इंडियन बैंक, पो० बा० २५७, भद्र, अहमदाबाद]

३२ / स्वयं में होना ही स्वस्थ होना है

प्रिय योग चिन्मय,

प्रेम।

मनुष्य के व्यक्तित्व में अनेक केन्द्र हैं; लेकिन उलझे हुए सूत के धागों जैसा सब-कुछ उलझ गया है।

मन काम-केंद्र का काम कर रहा है।

इससे ही मस्तिष्कगत-यौन (Cerebral Sex) की विकृतियाँ पैदा हो गयी हैं।

एक कहानी याद आती है :

नेपोलियन के दरबार का एक संभ्रांत व्यक्ति अपनी यात्रा के समय के पूर्व ही वापिस आ गया था।

लेकिन, अपने निवास पर पहुँच कर उसने देखा कि उसकी पत्नी राजधानी के प्रधान पुरोहित की बाहों में है।

एक क्षण को तो वह ठिठका और फिर अत्यन्त शालीनता से खिड़की के पास जाकर राह चलते लोगों के प्रति आशीर्वाद देने की मुद्रा में खड़ा हो गया!

उसकी पत्नी ने धबड़ा कर पूछा कि यह क्या कर रहे हो तो उसने कहा : महामहिम पुरोहित जी मेरा कार्य कर रहे हैं, इसलिए मैं उनका कार्य किये दे रहा हूँ! (Monseigneur is performing my functions, so I am performing this!)

लेकिन, ऐसा चित्त के केंद्रों पर नहीं चल सकता है।

यद्यपि, ऐसा ही चल रहा है!

सो परिणाम प्रकट हैं।

चित्त कम ही है, चेतना कम ही है, विक्षिप्तता ही ज्यादा है।

मनुष्य एक विक्षिप्त-प्राणी हो गया है।

मनस् के स्वास्थ्य के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि चित्त का प्रत्येक केंद्र स्वयं का ही कार्य करे, अन्य का नहीं।

सब केंद्र स्वयं में हों, तो मनुष्य भी स्वयं में होता है।

और **स्वयं में होना ही स्वस्थ होना है।**

रजनीश के प्रणाम

१८-११-१९७०

[प्रति : स्वामी योग चिन्मय, बम्बई]

३३ / प्रार्थना और प्रतीक्षा

प्रिय पद्मा,

प्रेम। सुबह होने के करीब है। अब रात्रि के स्वप्नों की बातें छोड़ और सूर्य के स्वागत की तैयारी कर।

भोर का अंतिम तारा भी डूब रहा है। अतीत को भूल और भविष्य को देख।

प्रार्थनाएँ सुन ली गयी हैं और प्रभु-मंदिर के द्वार खुलने को ही हैं। उन्हीं पर टकटकी लगा। आँखें यहाँ-वहाँ न भटकें। कान और कुछ न सुनें। हृदय और कुछ न माँगे।

प्रतीक्षा और प्रार्थना।

प्रार्थना और प्रतीक्षा।

रजनीश के प्रणाम

२७-११-१९७०

[प्रति : श्रीमती पद्मा इंजीनियर, द्वारा–
श्री ए० बी० इंजीनियर, १५, सरस्वती महाल, पौड फाटा, उरडवणा, पूना–४]

३४ / संकल्प की जागृति

मेरे प्रिय,

प्रेम : आगे बढ़ें। लक्षण शुभ हैं। ध्यान की गंगा अभी गंगोत्री में है। लेकिन, पहुँचना चाहती है सागर तक।

फिर सागर दूर भी नहीं है।

संकल्प पूर्ण है तो गंगोत्री ही सागर बन जाती है।

संकल्प की कमी ही सागर की दूरी है।

संकल्प को संग्रहीत करें, क्योंकि संकल्प का बिखराव ही संकल्पहीनता है।

जैसे, किरणें संग्रहीत हो अग्नि बन जाती हैं।

ऐसे ही संग्रहीत संकल्प शक्ति बन जाता है।

यह शक्ति सबमें है।

यह शक्ति स्वरूपसिद्ध अधिकार है।

इसे जगायें और इकट्ठा करें।

उसका सोया होना ही संसार है।

उसका जागना ही मुक्ति है।

रजनीश के प्रणाम

२७-११-१९७०

[प्रति : श्री कांतिलाल एम० नायक, द्वारा–
बुक बांड इंडिया लि०, इंडस्ट्री हाउस, आश्रम रोड, अहमदाबाद]

३५ / जीना ही एकमात्र जानना है

प्रिय अन्सु,

प्रेम। नहीं–**कुछ भी मनुष्य के वश में नहीं है।**

क्योंकि, मनुष्य सागर की एक लहर है–सागर से अभिन्न।

इसलिए। **सोचो मत–बस जियो।**

क्षण में–अभी और यहीं।

और तुलना मत करो।

दो क्षणों की तुलना ही पागलपन है।

क्षण आणविक (Atomic) हैं।

उन्हें एक-दूसरे से तौलने का कोई भी उपाय नहीं हैं।

जीने का उपाय है–जीने से अलग जानने का कोई उपाय नहीं है।

बस जानो कि जीना ही एकमात्र जानना है (Living is the only knowing)।

और फिर आनंद ही आनंद है।

क्योंकि, **तुलना करनेवाले मन के अतिरिक्त और कहीं आनंद का अभाव नहीं है।**

रजनीश के प्रणाम

१४-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री अंसुबेन जानी, गढ़डा (स्वामीना), (गुजरात)]

प्रिय कमलेश,

प्रेम ! रस को उलीचो--फेंको--बिखेरो--चारों ओर ।
उसे रखो मत--बाँटो ।
क्योंकि, बाँटना ही उसके बढ़ने का नियम है ।
और रोका कि वह मरा ।
रस-दान की इस अनिवार्यता से ही जन्मी हैं समस्त कलाएँ ।
रस ही अभिव्यक्त होने की आतुरता में कला बन जाता है ।
वही बनता है गीत ।
वही मूर्ति ।
वही बनता है बुद्ध ।
वही कबीर ।
वही कृष्ण ।
रस को उलीचो--फेंको--बिखेरो ।
उठते--बैठते ।
सोते--जागते ।
उसे बाँटो ।
रोको तो वही रस जहर हो जाता है ।
बाँटो तो वही अमृत है ।

रजनीश के प्रणाम

१४-१२-१९७०

[प्रति : श्री कमलेश शर्मा, रायपुर, (म० प्र०)]

मेरे प्रिय,

प्रेम । प्रभु-लीला अद्‌भुत है ।
विरोध से भी कार्य ही होता है ।
और, शायद उसके बिना हो ही नहीं सकता है ।
इसलिए, जो मेरा विरोध करते हैं, मैं उनका अनुगृहीत ही होता हूँ ।
जीसस को जिन्होंने सूली दी--उनके साथ न्याय नहीं हुआ है ।
क्योंकि, उनके बिना जीसस को कोई जानता भी नहीं ।
जीसस का मंदिर जिस सूली को आधार बना कर खड़ा हुआ, उस सूली को जीसस के शत्रुओं ने निर्मित किया था ।
काश ! उन्हें यह पता होता ?
लेकिन, जीसस को यह जरूर ही पता था ।
जीसस ने कहा भी था : "ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं !"
सुकरात जैसों को जहर अकारण ही नहीं मिलता है--वे निश्चय ही उसके योग्य होते हैं--The deserve it.
क्योंकि, **वह जहर ही उनके संदेशों के लिए अमृत बन जाता है।**
इसलिए कहता हूँ : प्रभु लीला अद्‌भुत है !

रजनीश के प्रणाम

१४-१२-१९७०]

[प्रति : श्री जयेन्द्र भट्ट, बड़ौदा-६]

प्रिय सुशीला,

प्रेम। प्रभु स्वयं ही उनकी चिन्ता करता है; जो कि अपनी चिन्ता छोड़ देते हैं।

लेकिन, स्वयं के रहते स्वयं की चिन्ता नहीं छूटती है।

असल में स्वयं का होना ही वास्तविक चिन्ता (Anxiety) है

शेष सब चिन्ताएँ उस मूल चिन्ता की ही फीकी प्रतिध्वनियाँ हैं।

पर मनुष्य मूल को छोड़——स्रोत को छोड़——प्रतिछायाओं को ही मिटाने में जीवन गँवा देता है।

और, इधर रावण का एक सिर गिरता है, उधर दूसरा पैदा हो जाता है।

शाखाओं से चलता है संघर्ष और मूल को——जड़ को हम स्वयं ही जल देते रहते हैं।

ऐसी मूढ़ता ही मनुष्य का अभिनय कर रही है।

लेकिन, शाखाएँ जिनके हाथ में है, वे जड़ों को भी खोज सकते हैं।

शाखाओं से लड़ें न——वरन् शाखाओं के सहारे भूगर्भ में उतरें——जड़ों की खोज में।

और वहाँ चिन्ताएँ नहीं हैं।

वहाँ है अस्मिता (Ego)——वहाँ है स्व।

और वह स्व देखते ही——दर्शन मात्र से ही खो जाता है।

क्योंकि, अंधकार ही उनका जीवन है।

रजनीश के प्रणाम

१४–१२–१९७०

[प्रति : श्री सुशीला सिन्हा, पटना]

मेरे प्रिय,

प्रेम। सत्य के मार्ग में काँटे हैं——थोड़े नहीं, बहुत।

लेकिन, उनमें ही सत्य प्रेम की परीक्षा भी है।

सत्य के फुल जिन्हें पाना है, उन्हें काँटों से गुजरना ही पड़ता है।

सत्य सस्ता नहीं है।

कभी नहीं था, और कभी होगा भी नहीं।

मूल्य चुकाओ और घबड़ाओ नहीं।

सूली के पार ही सिंहासन है।

रजनीश के प्रणाम

१४–१२–१९७०

[प्रति : श्री अखिलानंद तिवारी, धनबाद (बिहार)]

४० / जीवन के तथ्यों की आग का साक्षात्कार कर

प्यारी गुणा,

प्रेम। दैनंदिन जीवन की व्यस्तता को ही जीवन मत समझ लेना।

वह जीवन के लिए जरूरी है, लेकिन जीवन ही नहीं है।

साधना को जो साध्य समझ लेता है, वह व्यर्थ ही जीवन के केन्द्र से च्युत हो जाता है।

फिर जो खाली न रह सके—अव्यस्त (Unoccupied) क्षण जिसे बोझिल और उबाने वाले हो जावें, उसकी व्यस्तता तो मात्र भुलावा है।

भुलावा स्वयं का—सत्य का।

भुलावा जीवन की असारता का।

भुलावा जो है—उसका।

और ऐसे **भुलावे में सोये रहना रुग्ण है।**

स्वस्थ तो वही है जो अव्यस्त क्षणों में आनंदित है।

स्वस्थ तो वही है जो स्वयं से पलायन (Escape) में नहीं है।

स्वस्थ तो वही है जो निपट स्वयं के साथ ही सुखी और संतुष्ट है।

क्रोध है तो पश्चात्ताप से कुछ भी न होगा।

क्रोध है तो उसे जियो और जानो।

उसे भोगो—उसके जहर को पियो और उसकी आग में जलो।

क्रोधाग्नि की समग्रानुभूति (Total Experiencing) ही उसके बाहर छलाँग बन जाती है।

पश्चात्तापादि क्रोध को सदा-सदा के लिए चलाये रखने की योजनाएँ हैं।

क्योंकि, पश्चात्ताप के बाद पुनः क्रोध करने की पूर्वास्थिति के अतिरिक्त और क्या उपलब्ध होता है?

पश्चात्ताप अहंकार की पुर्नस्थापना है।

पश्चात्ताप में बहते आँसू मन की चालाकियों के जाल से जन्मते हैं।

अन्यथा, फिर क्रोध असंभव हो जाता न?

स्वर्ग का मार्ग अनिवार्यतः नर्क से होकर गुजरता है।

लेकिन, जो नर्क में भी आँखें बंद करके जीने में कुशल हैं, वे नर्क में ही अटक जाते हैं।

आँखें खोलो—धोखा न दो स्वयं को।

क्रोध है तो जानो कि **मैं क्रोध हूँ।**

और यहाँ-वहाँ भागो मत।

तथ्य में ठहरो।

आग में रुको।

और, फिर छलाँग लग जाती है आग के बाहर—नर्क के बाहर।

लेकिन मनुष्य का कुशल मन कहता है: मैं बुरा नहीं हूँ और यदि बुराई आती है तो मेरे बावजूद आती है। बुराई मुझमें नहीं है। बुराई **परिस्थिति में** है। या, **दूसरे** में है।

ऐसी होशियारियों को समझना।

ऐसी होशियारियाँ अत्यंत महँगी हैं।

क्योंकि, नर्क उनकी आधारशिला पर ही निर्मित होता है।

क्रोध को ही देखो—उसके कारण खोजने में मत लग जाओ।

वह क्रोध के दर्शन से बचना है।

और क्रोध के दर्शन के अतिरिक्त क्रोध से और कोई नहीं बचा सकता है।

व्यक्ति अकेला है—बिलकुल अकेला।

इसीलिए, प्रेम है।

इसीलिए, प्रार्थना है।

लेकिन, यह खोज असफल होने को आबद्ध है।

वह असफल होगी ही।

क्योंकि, व्यक्ति स्वयं के अतिरिक्त और किसी को नहीं पा सकता है।

ऐसी ही नियति है।

ऐसा ही नियम है।

इसलिए, जो प्रेम, जो प्रार्थना, दूसरे की खोज की वासना से उत्पन्न होते हैं वे दुःख के अतिरिक्त और कहीं नहीं ले जाते हैं।

इसमें किसी का कसूर नहीं है।

सिर्फ नियम का अज्ञान है।
और जीवन के नियमों के अज्ञान का फल भोगना ही पड़ता है।
हाँ–एक और प्रेम भी है––एक और प्रार्थना भी है।
लेकिन वे स्वयं की खोज और उपलब्धि से निष्पन्न होते हैं।
तब प्रेम माँग नहीं, दान है।
तब प्रार्थना आकांक्षा नहीं, अनुगृहीत चित्त का अहोभाव है।

रजनीश के प्रणाम
१४–१२–७०

[प्रति : सुश्री गुणा शाह, बम्बई]

४१ / मैं नहीं–अब तो वही है

प्रिय कमलेश,

प्रेम। मैंने नहीं––स्वीकारा है तुम्हें स्वयं प्रभु ने।
अब मैं हूँ भी ?
देखो––कहीं भी दिखाई पड़ता हूँ ?
पारदर्शी (Transparent) **भी हो गया हूँ स्वयं को खोकर।**
इसलिए, जिसके पास भी आँखें हैं, वह मेरे आर-पार देख सकता है।
और तुम्हारे पास आँखें हैं।
देखो––संकोच छोड़ो––कहीं भी मैं दिखाई पड़ता हूँ ?
मैं नहीं––अब तो वही है।
और जब मैं कहता हूँ 'मैं'––तब वही कहता है।
इसलिए, बहुत बार मेरा 'मैं' विनम्र भी नहीं मालूम पड़ता है।
क्योंकि, वह मेरा है ही नहीं।
और, जिसका है, उसके लिए क्या विनम्रता––क्या अहंकार ?

रजनीश के प्रणाम
१५–१२–७०

[प्रति : श्री कमलेश शर्मा, रायपुर, (म० प्र०)]

४२ / अन्तः-अनुभवों के साक्षी बनें

मेरे प्रिय,

प्रेम। लक्षण अति शुभ हैं।

मंजिल ज्यादा दूर नहीं है।

प्रार्थना पूर्वक आगे बढ़ते रहें।

जो हो रहा है––जो-जो अनुभव हो रहे हैं वे बहुमूल्य हैं; लेकिन उनके संबंध में सोच-विचार न करें––बस उनके साक्षी रहें।

ऐसी अवस्था में विचार बाधा है। विश्लेषण घातक है। व्याख्या विनाश है।

राह पर और भी अनूठे दृश्य आवेंगे––पर उन्हें देखें और आगे बढ़ें।

एक पल भी उनके पास रुकना नहीं है।

अब उन पर न रुकना ही साधना होगी।

उनके संबंध में बस दृष्टा से ज्यादा कुछ भी नहीं होता है।

ये क्षण परीक्षा के हैं।

और, ध्यान रहे कि **हजार में एक व्यक्ति इस दिशा में चलता है और हजार चलने वालों में एक आगे बढ़ता है और हजार बढ़ने वालों में एक पहुँचता है।**

लेकिन, तुम्हारे संबंध में मैं पूर्णतया आशान्वित हूँ।

रजनीश के प्रणाम

१५–१२–१९७०

[प्रति : श्री प्रेम सींग, कपूरथला, (पंजाब)]

४३ / विचार, निर्विचार और सत्य

प्रिय अरुण,

प्रेम। विचार सम्मोहक (Hypnotic) शक्ति है।

इसलिए, **जैसा सोचोगे वैसा हो जाओगे।**

विचार के बीज सम्हल कर बोना।

क्योंकि, फिर वैसी ही फसल उपलब्ध होती है।

स्वयं को साहसहीन समझोगे तो हो जाओगे।

लेकिन, ध्यान रखना कि समझना 'होने' के कारण नहीं है; **विपरीत, 'होना' ही समझने के कारण है।**

मनुष्य वही है जो सोचता है कि है।

समस्त आकृतियाँ––स्वयं को दिये गये समस्त रूप, विचार-प्रक्षेपण (Thought Projection) हैं।

इसलिए ही तो जहाँ विचार नहीं है, वहीं मनुष्य भी नहीं है।

इसलिए ही तो जहाँ विचार नहीं है, वहीं निराकार है।

इसलिए ही तो जहाँ विचार नहीं है, वहीं निर्गुण है।

निर्विचार चेतना अर्थात् परमात्मा।

आकार देना है तो विवेक से दो।

अन्यथा दो ही नहीं।

विचार करना है तो सम्हलकर।

अन्यथा बिना सम्हले ही निर्विचार में कूदो।

कुछ बनना है तो सोचकर बनो।

हाँ––मिटना है तब सोच-विचार की कोई जगह नहीं है।

लेकिन, बिना सोचे-विचारे बनना घातक है।

क्योंकि, तब आकृतियाँ विकृत और कुरूप हो जाती हैं।

सत्य को नहीं खोज सकते हो अभी, तो **कम से कम 'सुन्दर' को तो खोजो।**

यद्यपि, 'सुन्दर' की खोज अंततः सत्य की खोज में ले जाती है।

क्योंकि, सत्य ही परम सौंदर्य है।

और, निराकार ही पूर्णाकार है।

रजनीश के प्रणाम

१५–१२–७०

[प्रति : श्री अरुणकुमार, पटना]

४४ / संकल्प के बिना जीवन स्वप्न है

प्यारी अरुण,

प्रेम। **अब देर न कर और ध्यान में डूब।**

बहुत देर तो वैसे ही हो चुकी है।

स्मरण कर--कितने जन्मों की तेरी आकांक्षा है ?

अब स्मरण कर--अब संकल्प कर।

साहस के बिना जीवन पर जीवन ऐसे ही बीत जाते हैं।

संकल्प के बिना अवसर पर अवसर ऐसे ही खो जाते हैं।

संकल्प के बिना जीवन स्वप्न है।

और, संकल्प हो तो स्वप्न भी सत्य हो जाते हैं।

और, संकल्प हो तो स्वप्न भी सत्य हो जाते हैं।

संकल्प ही वह कीमिया है जो कि कंकड़-पत्थरों को हीरों में बदल देती है।

रजनीश के प्रणाम

१५-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री अरुण, अमृतसर, (पंजाब)]

४५ / अज्ञान का बोध

प्रिय राज,

प्रेम। **अज्ञान का बोध बड़ी उपलब्धि है।**

क्योंकि, ज्ञान के मंदिर में प्रवेश की वह अनिवार्य शर्त है।

तेरा ज्ञान जा रहा है सो अच्छा है।

जो ज्ञान उधर है वह ऐसा ही व्यर्थ हो जाता है।

वह व्यर्थ सिद्ध न हो तो ही खतरा है।

अज्ञान को ढँकना ज्ञान नहीं है।

अज्ञान को भूलना ज्ञान नहीं है।

लेकिन, साधारणतः जिसे मनुष्य ज्ञान कहता है, वह ऐसा ही ज्ञान है।

ऐसे ज्ञान से वास्तविक ज्ञान के आगमन का द्वार ही अवरुद्ध हो जाता है।

निर्मम होकर ऐसे ज्ञान को फेंक दे।

कचरे की भाँति।

और उसे लौट-लौटाकर भी मत देख।

आगे बढ़--आगे जहाँ कि ज्ञान का सूर्य है।

स्व-ज्ञान में।

स्वानुभूति में।

ध्यान में।

समाधि में।

रजनीश के प्रणाम

१५-१२-१९७०

[प्रति : श्रीमती राजशर्मा, अमृतसर, (पंजाब)]

प्रिय योग समाधि,

प्रेम। तेरे लिए जो-भी संभव है, वह करूँगा।
और, वह भी, जो-असंभव है।
क्योंकि, असंभव तो कुछ भी नहीं है।
मदद तुझे दी जा रही है।
अनेक रूपों में।
दृश्य भी—अदृश्य भी।
उसका अनुभव भी तुझे होता है।
धीरे-धीरे अनुभव और भी स्पष्ट होगा।
अदृश्य को पकड़ने के लिए चित्त को समायोजित (Adjust) होने में थोड़ा समय लगता है।
लेकिन, जो भी अनुभव हो, उसे **ध्यानपूर्वक देखना।**
आँखों को बंद करके।
तो धीरे-धीरे तेरी तीसरी आँख (Third Eye) सक्रिय हो उठेगी।
जिन इंद्रियों से तू अभी परिचित है, अदृश्य में उनका उपयोग नहीं है।
उनकी अपनी सीमा है।
वे दृश्य—सूक्ष्म और अशरीरी हैं।
उनसे तेरा पहला और धुंधला परिचय शुरू हो गया है।
यह शुभ है और मैं प्रसन्न हूँ।

रजनीश के प्रणाम
१५-१२-१९७०

[प्रति : मा योग समाधि, राजकोट, सौराष्ट्र]

प्रिय राजेन्द्र,

प्रेम। **जीवन है एक स्वप्न।**
जन्म और मृत्यु के बीच फैला हुआ एक इन्द्र धनुष।
है तो भी नहीं है।
और नहीं है तो भी अंतर नहीं पड़ता है।
इसलिए, शरीर की चिन्ता छोड़ो।
और **खोजो स्वयं को।**
स्वयं की चेतना को।
उसे जो शरीर में है और शरीर नहीं है।
उस अशरीरी के प्रति जागते ही सब बदल जाता है।
जैसे आधी रात हो और अचानक सूर्य निकल आये।
या जैसे मरुस्थल में अचानक गंगा का आगमन हो जाये।
बस ऐसे ही सब बदल जाता है।
व्यर्थ चिन्ताओं में समय न खोओ।
और व्यर्थ आशाओं में भी नहीं।
क्योंकि, जीवन में आत्मा के अतिरिक्त और कोई आशा नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
१६-१२-१९७०

[प्रति : श्री राजेन्द्र आकुल, जबलपुर]

४८ / मन से तादात्म्य तोड़

प्रिय योगप्रेम,

प्रेम। हवा के झोकों में कंपनी-दिये की ज्योति की भाँति है मन।
कँपेगा।
दुविधा में पड़ेगा।
खंड-खंड होता रहेगा।
तू उसके पार हो।
उससे दूर हो।
उससे ऊपर उठ।
उसे पीछे छोड़—नीचे छोड़।
तू मन नहीं है।
तू तो वही है जो कि मन को भी जानता है।
उसके कम्पनों को जानता है।
उसकी दुविधाओं को जानता है।
इस जानने (Knowing) में ही ठहर।
इस दृष्टा-भाव में ही रमण कर।
तू तो यह साक्षी (Witness) ही बन।
और फिर इस अतिक्रमण से मन शांत हो जाता है।
ऐसे ही जैसे कि हवा के झोंके बंद हो गये हों तो दिये की लौ नहीं कंपती है।
मन से स्वयं का तादात्म्य (Identity) ही हवा के झोंकों का काम करता है।
इधर टूटा तादात्म्य—उधर हुई आँधियाँ बंद।
और जहाँ आँधियाँ नहीं हैं, वहीं आनंद है।

रजनीश के प्रणाम

१६-१२-१९७०

[प्रति : मा योग प्रेम, आजोल]

४९ / प्रेम के मार्ग पर काँटे भी फूल बन जाते हैं

प्यारी मधु,

प्रेम। मीरा ने ऐसे ही नहीं गाया है : 'सूली ऊपर सेज पिया की।'
सच में ही सेज सूली के ऊपर ही है।
या कि सूली ही सेज है?
लेकिन, **पिया की खोज का आनंद सूलियों की चिन्ता नहीं करता है।**
प्रेम के मार्ग पर पड़े काँटे अनायास ही फूल बन जाते हैं।
वहाँ अँधेरा भी प्रकाश है।
और विष भी अमृत है।
और वे अभागे हैं जो कि ऐसे विष को नहीं जानते हैं जो कि अमृत है।
लेकिन तू तो जान रही है।
और भी जानेगी।
और इसलिए जो जानते हैं वे तुझसे ईर्ष्या करें तो आश्चर्य तो नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

१६-१२-१९७०

[प्रति : मा आनंद मधु, आजोल]

५० / संन्यास सबसे बड़ा विद्रोह है

प्रिय कृष्ण कबीर,

प्रेम। संन्यास बड़ा से बड़ा विद्रोह है––संसार से, समाज से, सभ्यता से।
वह मूल्यों का मूल्यांतरण है।
वह स्वयं से स्वयं में और स्वयं के द्वारा क्रांति है।
इसलिए, अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ सहनी होंगी।
विरोध होगा।
हँसी होगी।
लेकिन, उस सबके साक्षी बनना।
वह परीक्षा है।
और, उससे तुम निखरोगे और उज्ज्वल बनोगे।
उनका अनुग्रह मानना जो तुम्हें सतावें।
क्योंकि, वे ही तुम्हारे लिए परीक्षा का अवसर देंगे।
विनम्रता से सब सहना।
संतोष से सब स्वीकार करना।
और, तब तुम पाओगे कि **इस जगत् में शत्रु कोई भी नहीं है।**
सिवाय स्वयं के अहंकार के।

रजनीश के प्रणाम
१६–१२–७०

[प्रति : स्वामी कृष्ण कबीर, अहमदाबाद]

५१ / जीवन चुनौती–अनंत आयामी

प्रिय कमलेश,

प्रेम। **जीवन चुनौती है ही।**
अनंत आयामी (Multi-Dimensional)।
इसलिए ही तो जीवन ठहराव नहीं, गति है।
अंतहीन।
इसलिए जो जीवन को चुनौती की भाँति नहीं लेते हैं, वे जीते नहीं, बस मरते ही हैं।
पूरे जीवन।
जन्म से मृत्यु तक उनकी बस एक ही गति है––मृत्यु की ओर।
उनकी मंजिल सुनिश्चित है, क्योंकि उनका मुकाम मृत्यु है।
जीवन है अनिश्चित।
प्रतिपल नया।
अनायोजित।
अनपेक्षित।
जीवन की भविष्यवाणी नहीं हो सकती है।
जीवन का ज्योतिष नहीं है।
सब ज्योतिष मृत्यु के ही हैं।
इसलिए ही जीवन चुनौती (Challenge) है।
मृत्यु है विश्राम।
जीवन है संघर्ष।
लेकिन, विश्राम भी उन्हीं के लिए है मृत्यु, जिन्होंने जीवन का संघर्ष किया है।
जो जिये ही नहीं उनके लिए मृत्यु भी बस भय के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
इसलिए जो जितना भयभीत है मृत्यु से, वह उतना ही कम जीवित है।
जो जीवित है, उसके लिए तो जैसे मृत्यु है ही नहीं।
जीवन के संघर्ष से ही मृत्यु का विश्राम-रूप अर्जित होता है।

वह जीवन की कमाई है।
इसलिए **जो मृत्यु को कमाकर मरता है,** वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।
जैसे कोई जीसस।
जैसे कोई सुकरात।
कमाओ मृत्यु को--जीवन की सारभूत चुनौती यही है।

रजनीश के प्रणाम
१६-१२-७०

[प्रति : श्री कमलेश शर्मा, रायपुर, (म० प्र०)]

प्रिय कुसुम,

प्रेम। भय न करो।
ध्यान में जो भी हो होने दो।
मन रेचन (Catharis) में है तो उसे रोको मत।
चित्त-शुद्धि का यही मार्ग है।
अचेतन (Unconscious) में जो भी दबा है, वह उभरेगा।
उसे मार्ग दो ताकि उससे मुक्ति हो सके।
उसे दबाया कि ध्यान व्यर्थ हुआ।
और उससे मुक्ति हुई नहीं कि ध्यान सार्थक हुआ।
इसलिए, **समस्त उभार का स्वागत करो।**
और उसे **सहयोग** भी दो।
क्योंकि, अपने आप जो कार्य बहुत समय लेगा, वह सहयोग से अल्पकाल में ही हो जाता है।

रजनीश के प्रणाम
१७-१२-१९७०

[प्रति : कुसुम, पूना]

५३ / स्वयं को प्रभु-पूजा का नैवेद्य बना

प्यारी बिमल,

प्रेम। स्वीकृत है--तू सदा से ही स्वीकृत है।

जैसी है, वैसी ही।

प्रभु-मंदिर के द्वार सदा ही **बेशर्त खुले** हैं।

स्वयं को ही जो स्वयं स्वीकार नहीं कर पाते हैं, उनके अतिरिक्त प्रभु-मंदिर में कोई भी अस्वीकृत नहीं होता है।

लेकिन उसकी जिम्मेदारी स्वयं उन पर ही है।

आत्म-निन्दा अधर्म है--शायद वही एकमात्र अधर्म है।

आत्म-निन्दा ही मूल पाप (Original Sin) है।

क्योंकि, आत्म-निंदक स्वयं को प्रभु-पूजा का नैवेद्य नहीं बना पाता है।

स्वयं की पूर्ण स्वीकृति (Total Acceptance) से जीवन में जो फूल खिलता है, वही तो प्रभु-चरणों में रखा जा सकता है।

रजनीश के प्रणाम

१७-१२-१९७०

पुनश्च : सूदजी को प्रेम। उनका स्वास्थ्य अब कैसा है? उनकी सेवा ही तेरी साधना है।

[प्रति : श्रीमती विमल सूद, पूना]

५४ / ध्यान आया कि मन गया

प्रिय ललिता,

प्रेम। ध्यानोपलब्धि **समय** का सवाल नहीं है।

संकल्प (Will) का है।

संकल्प पूर्ण हो तो क्षण में भी ध्यान घटित होता है।

और संकल्पहीन चित्त जन्मों-जन्मों तक भी भटक सकता है।

संकल्प को प्रगाढ़ कर।

संकल्प को केंद्रित कर।

संकल्प को पूर्ण कर।

और फिर ध्यान स्वतः ही तेरे द्वार खटखटायेगा।

और मन तब तक सताता ही है जब तक ध्यान नहीं है।

मन (Mind) **ध्यान** (Meditation) **के अभाव का ही नाम है।**

जैसे अंधकार प्रकाश के अभाव का नाम है--ऐसे ही।

प्रकाश आया कि अंधकार गया।

ध्यान आया कि मन गया।

इसलिए अब ध्यान में डूब।

शेष सब पीछे स्वयं ही चला आता है।

रजनीश के प्रणाम

१७-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री ललिता राठौर, चन्द्रावतीगंज, (फतेहाबाद)]

५५ / जो है—है, फिर द्वन्द्व कहाँ!

प्रिय गीतगोविन्द,

प्रेम। निराश क्यों होते हो ?
क्या निराशा अति-आशा का ही परिणाम नहीं है ?
उदास क्यों होते हो ?
क्या उदासी अति-अपेक्षा (Expectation) की ही छाया नहीं है ?
निराशापूर्ण हो तो फिर निराश होने का उपाय नहीं रहता है।
उदासी पूर्ण हो तो वह भी उत्सव बन जाती है।
इसलिए कहता हूँ : द्वन्द्व छोड़ो।
यह धूप-छाँव का खेल छोड़ो।
जागो और जानो कि जो है—है।
अंधकार तो अंधकार।
मृत्यु तो मृत्यु।
जहर तो जहर।
और फिर देखो : अंधकार कहाँ है।
और फिर खोजो : मृत्यु कहाँ है ?
अंधकार है आलोक की आकांक्षा में।
मृत्यु है अनंत जीवैषणा में।
और जहर अमृत की माँग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
१७-१२-१९७०

[प्रति : स्वामी गीतगोविन्द, द्वारा : इंडियन टुवैकों कं० लि०, पो०—नवरंगपुरा, अहमदाबाद-९]

५६ / कारण स्वयं में खोज

प्रिय चन्दन,

प्रेम। जगत न दुख है, न सुख।
जगत् वैसा ही हो जाता है जैसी कि हमारी दृष्टि है।
दृष्टि ही सृष्टि है।
प्रत्येक स्वयं अपने जगत् का निर्माता है।
यदि, तुझे जीवन का प्रत्येक क्षण दुःख देता है तो कहीं न कहीं तेरी दृष्टि में भूल है।
और यदि तुझे सब ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई पड़ता है तो निश्चय ही तूने आलोक को देखने वाली आँखें बंद कर रखी हैं।
स्वयं पर **पुनर्विचार** कर।
स्वयं को नये सिरे से देख।
दूसरों को दोष दिया तो स्वयं की भूल न खोज पायेगी।
परिस्थितियों को दोष दिया तो मनःस्थिति की जड़ों में प्रवेश न हो सकेगा।
इसलिए, जो स्थिति है उसके कारणों को स्वयं में खोजने निकल।
कारण सदा स्वयं में ही होते हैं।
लेकिन सदा ही दूसरों में दिखाई पड़ते हैं।
इस मूल से बचना और फिर दुःख को बचाये रखना मुश्किल होगा।
दूसरे तो सिर्फ दर्पण (Mirror) का काम करते हैं।
चेहरा तो सदा हमारा अपना ही होता है।
जीवन महोत्सव हो सकता है।
लेकिन स्वयं को नये सिरे से सृजन करना आवश्यक है।
और वह कार्य कठिन नहीं है।
क्योंकि स्वयं की दृष्टि की भूलों के **दर्शन** से ही उन भूलों के प्राणान्त शुरू हो जाते हैं और नये व्यक्ति का जन्म होने लगता है।

रजनीश के प्रणाम
१७-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री चन्दन बी० पन्ड्या, द्वारा : श्री बी. आई. पन्ड्या, बड़ौदा-१ (गुजरात)]

५७ / खिलना—संन्यास के फूल का

मेरे प्रिय,

प्रेम। जीवन में जो भी शुभ है, सुन्दर है, सत्य है, संन्यास उन सबका समवेत संगीत है।

संन्यास के बिना जीवन में सुवास असंभव है।

जीवन अपने आप में जड़ों से ज्यादा नहीं है।

संन्यास का फूल—जब तक न खिले तब तक जीवन अर्थ और आनन्द और अहोभाव को उपलब्ध नहीं होता है।

और मैं यह जानकर अत्यधिक आनन्दित हूँ कि आत्म-क्रांति का वह अमूल्य क्षण तुम्हारे जीवन में आकर उपस्थित हो गया है।

तुम्हारी आँखों में उस क्षण को मैंने देखा है।

वैसे ही जैसे भोर में सूर्योदय के पूर्व आकाश लालिमा से भर जाता है, ऐसे ही संन्यास के पूर्व की लालिमा को मैंने तुम्हारे हृदय पर फैलते देखा है।

पक्षी स्वागत-गीत गा रहे हैं और सोये पौधे जाग रहे हैं।

अब देर उचित नहीं है।

ऐसे भी क्या काफी देर नहीं हो चुकी है?

रजनीश के प्रणाम

१७–१२–१९७०

[प्रति : अनूपचन्द एम० शाह, सुरेन्द्रनगर (गुजरात)]

५८ / तेरी मर्जी पूरी हो (Thy will Be Done)

मेरे प्रिय,

प्रेम। समर्पण—पूर्ण समर्पण (Total surrender) के अतिरिक्त प्रभु के मंदिर तक पहुँचने का और कोई भी मार्ग नहीं है।

छोड़ें—सब उस पर छोड़ें।

नाहक स्वयं के लिए सिर पर बोझ न ढोवें।

जो उसकी मर्जी—इस सूत्र को सदा स्मरण रखें।

जीसस ने कहा है : 'तेरी मर्जी पूरी हो'—Thy will Be Done.

इसे स्वयं से कहते रहें।

चेतन से अचेतन तक यही स्वर गुँजने लगे।

जगते—सोते यही धुन बजने लगे।

और फिर किसी भी क्षण **जैसे ही समर्पण पूर्ण होता है, समाधि घटित हो जाती है।**

समर्पण की पूर्णता ही समाधि है।

और स्वयं का विसर्जन ही समर्पण है।

कहें : 'जो उसकी मर्जी' और भीतर देखें।

क्या कुछ टूटता और खोता हुआ नहीं मालूम पड़ता है?

क्या कुछ नया और अपरिचित जन्म लेता हुआ नहीं मालूम पड़ता है?

रजनीश के प्रणाम

१७–१२–१९७०

[प्रति : श्री काशीनाथ सोमण, पूना]

५९ / स्वयं का समग्र स्वीकार

प्रिय समीर,

प्रेम। स्वयं से लड़ो मत।
व्यर्थ है वैसी लड़ाई।
क्योंकि उससे जीत कभी भी फलित नहीं होती है।
स्वयं से लड़ना क्रमिक आत्मघात (Gradual suicide) के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
स्वयं को स्वीकारो।
प्रसन्नता से।
अनुग्रह से।
जो भी है शुभ है।
काम भी, क्रोध भी।
क्योंकि, जो भी है प्रभु से है।
उसे स्वीकारो और समझो।
उसमें छुपी संभावनाओं को खोजो और खोलो।
फिर तो काम (Sex) भी राम का ही बीज मालूम होता है।
और क्रोध ही क्षमा का द्वार बन जाता है।
अशुभ (Evil) शुभ (Good) का शत्रु नहीं है।
वरन् **अशुभ मात्र अवरुद्ध शुभ है।**

रजनीश के प्रणाम
१७-१२-१९७०

[प्रति : श्री समीर कुमार, अकोला, (महा०)]

६० / सत्य खोजे बिना जीवन असार है

प्यारी कौमुदी,

प्रेम। संसार स्वप्न ही है।
खुली आँखों देखा गया सपना।
जन्म और मृत्यु के बीच जो है, वह सत्य नहीं है।
क्योंकि सत्य का न कोई जन्म है और न कोई मृत्यु है।
सब जन्म स्वप्न के हैं--सब मृत्युएँ भी स्वप्न की हैं।
जिसका आरंभ है और अंत है--वही स्वप्न है।
जिसका न आदि है, न अंत--वही सत्य है।
ऐसे **सत्य को खोजे बिना जीवन असार है।**
और मजा तो यह है कि वह सत्य स्वयं में ही है।
उसे खोजने कहीं भी नहीं जाना है--न काशी, न काबा।
और न ही उसे खोजने के लिए भविष्य की या अवसर की ही प्रतीक्षा करनी है।
क्योंकि, वह अभी और यहीं उपलब्ध है।
लेकिन, **मनुष्य स्वयं को छोड़ कर और सब कहीं** जाता है।
स्वयं को छोड़ कर और सब कुछ खोजता है।
परिणामतः स्वयं को छोड़ कर वह सब कहीं पहुँच जाता है।
और स्वयं को खोकर वह शेष सब पा लेता है।
और ऐसे जो सम्राट् हो सकता है, वह अपने ही हाथों भिखारी हो जाता है।
पर ऐसी भूल में अब तू न पड़ना।
ध्यान में गहरे उतर--ताकि स्वयं को जान सके।
संसार के स्वप्न को समझ--ताकि स्वयं के सत्य को जान सके।
उसे खोज जो कि अजन्मा है, अज्ञात है--ताकि उसे पा सके जो कि अमृत है।

रजनीश के प्रणाम
१७-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री कौमुदी नटवर लाल, (अफ्रीका)]

६१ / ध्यान की अनुपस्थिति है मन

मेरे प्रिय,

प्रेम। ध्यान के लिए श्रम करो।
मन की सब समस्याएँ तिरोहित हो जावेंगी।
असल में तो **मन ही समस्या है** (Mind is the problem)।
शेष सारी समस्याएँ तो मन की प्रतिध्वनियाँ मात्र हैं।
एक-एक समस्या से अलग-अलग लड़ने से कुछ भी न होगा।
प्रतिध्वनियों से संघर्ष व्यर्थ है।
पराजय के अतिरिक्त उसका और कोई परिणाम नहीं है।
शाखाओं को मत काटो।
क्योंकि एक शाखा के स्थान पर चार शाखाएँ पैदा हो जावेंगी।
शाखाओं को काटने से वृक्ष और भी बढ़ता है।
और समस्याएँ शाखाएँ हैं।
काटना ही है तो जड़ को काटो।
क्योंकि जड़ के कटने से शाखाएँ अपने आप ही विदा हो जाती हैं।
और **मन** है जड़।
इस जड़ को काटो ध्यान से।
मन है समस्या।
ध्यान है समाधान।
मन में समाधान नहीं है।
ध्यान में समस्या नहीं है।
क्योंकि, मन में ध्यान नहीं है।
क्योंकि, ध्यान में मन नहीं है।
ध्यान की अनुपस्थिति है मन।
मन का अभाव है ध्यान।
इसलिए कहता हूँ : ध्यान के लिए श्रम करो।

रजनीश के प्रणाम
१८-१२-१९७०

[प्रति : श्री भोगीलाल मोदी, आजोल (गुजरात)]

६२ / विराट् अदृश्य का स्पर्श

प्रिय योग करुणा,

प्रेम। मैं सदा साथ हूँ।
साधना में जब भी तेरे पैर डगमगायें, स्मरण करना मुझे।
और तू पायेगी कि अदृश्य हाथों से सहायता पहुँच गयी है।
दृश्य शक्तियाँ ही सब कुछ नहीं हैं।
वस्तुतः तो अदृश्य शक्तियों के सागर के समक्ष वे छोटे-मोटे झरनों से ज्यादा नहीं हैं।
और उनका मूल स्रोत भी अदृश्य में ही है।
लेकिन, **अदृश्य से सहायता लेना** भी एक कला है।
और शायद वही **श्रेष्ठतम कला है।**
मौन होकर, असहाय होकर, अदृश्य के हाथों में स्वयं को छोड़ते ही विराट् से संबंध निर्मित हो जाते हैं।
मैं तो अभी बस **एक सीढ़ी** का काम कर रहा हूँ।
जैसे ही तेरा सीधा संबंध स्थापित हो जाये, वैसे ही सीढ़ी को हटा देना है।
सीढ़ियों पर चढ़ना भी होता है और फिर सीढ़ियों से उतरना भी होता है।
अभी मुझे स्मरण रखो, फिर मुझे विस्मरण भी करना।
लेकिन, विस्मरण तो वही कर सकेगा न, जिसने कि स्मरण किया है?

रजनीश के प्रणाम
१८-१२-१९७०

[प्रति : मा योग करुणा, विश्वनीड़ : संस्कार तीर्थ, आजोल (गुजरात)]

६३ / बस स्मरण कर स्वयं का

प्यारी निर्मला,

प्रेम। काश ! तू अयोग्य होती तो योग्य बनाना आसान था।
सोये को जगाना क्या कठिन है ?
लेकिन, **जागे को जगाने की कठिनाई भारी है।**
है न ?
कोई भी अयोग्य नहीं है--यही कठिनाई है।
कोई भी अपात्र नहीं है--यही कठिनाई है।
प्रभु कण-कण में मौजूद है तो आयोग्यता कैसी ?
वही है और कोई नहीं है तो अपात्रता कहाँ ?
इसलिए बस स्मरण कर स्वयं का।
स्मरण कर।
स्मरण कर।
और, स्मरण रख कि मैं सदा साथ हूँ।
घर में नहीं, तेरे हृदय में ही उपस्थित हूँ।
आँखें बंद कर और देख--क्या नहीं हूँ ?

रजनीश के प्रणाम

१९-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री निर्मल, अहमदाबाद]

६४ / ध्यान में घटी मृत्यु के पार ही समाधि है

मेरे प्रिय,

प्रेम। ध्यान के वृक्ष पर फूल आने शुरू हो गये हैं।
नाचो।
खुशी मनाओ।
और प्रभु को धन्यवाद दो।
जन्मों की प्यास पूरी होने के करीब है।
जो सदा-सदा चाहा था, वह होने के निकट है।
भय न करना।
चाहे कुछ भी हो।
मृत्यु भी घटित होती मालूम हो तो भी आनंद से साक्षी बने रहना।
क्योंकि, ध्यान में घटी मृत्यु के पार ही समाधि है।
और समाधि अमृत है।
अब कठिन होगी चढ़ाई।
क्योंकि, शिखर निकट है।
लेकिन, धैर्य से और प्रार्थना पूर्वक आगे बढ़ते रहो।
जब भी उलझ जाओ,
या मार्ग खोता मालूम पड़े,
या साहस न जुटा पाओ,
या दुविधा घेर ले,
तभी मेरा स्मरण करना।
लेकिन, जहाँ तक बन सके **साधारणतः मुझे मत पुकारना।**
स्वयं ही जूझना।
स्वयं ही लड़ना।
जब और कोई उपाय ही न रहे, और पाओ कि असहाय हो, तभी मुझे स्मरण करना।
वैसे तुम्हारे स्मरण के बिना भी जो जरूरी है, वह मैं करता ही रहता हूँ।

रजनीश के प्रणाम

१९-१२-१९७०

[प्रति : श्री चन्द्रकांत सोलंकी, सुरेन्द्रनगर (सौराष्ट्र)]

६५ / स्वप्न में डूबना ही दुःख है

प्रिय नीला,

प्रेम। चिन्ता न लो।

इस जीवन में चिन्ता जैसा कुछ है ही नहीं।

समझो कि सब स्वप्न है।

है भी।

जो आज है और कल नहीं है, वह स्वप्न ही है।

उसमें इतना मत डूबो।

डूबने से ही चिन्ता जन्मती है।

स्वप्न से बाहर निकलो।

जरा दूर खड़े होकर सब देखो।

थोड़ा दृष्टा बनो।

स्वप्न में डूबना ही दुःख है और स्वप्न में जागते ही स्वप्न बिखर जाता है।

और वही आनंद भी है।

रजनीश के प्रणाम

१९-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री, नीला, विलेपार्लें, बम्बई-५७]

६६ / शुभ है बोध-अभाव, खालीपन और अधूरेपन का

मेरे प्रिय,

प्रेम। प्रभु के बिना जीवन अधूरा है ही।

इसलिए, अधूरा लगता **है।**

वैसे, यह बोध--**अभाव--अधूरेपन की यह प्रतीति शुभ है।**

क्योंकि, इस बोध से और इस बोध के कारण ही ब्रह्म की जिज्ञासा शुरू होती है।

'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा।'

इस बोध से बचना भर नहीं।

इस अभाव से भागना भर नहीं।

इस प्रतीति से पलायन भर नहीं करना।

वैसे मन पलायन ही सुझायेगा।

वह पलायन ही संसार है।

संसार पलायन (Escape) है।

संसार की सारी व्यस्तता पलायन है।

वह अभाव को भरने की निष्फल कोशिश है।

इसलिए, उस दौड़ के फलस्वरूप सिवाय विषाद के और कुछ भी हाथ नहीं लगता है।

क्योंकि चाहिए प्रभु और भरते हैं पदार्थ से।

क्योंकि चाहिए धर्म और भरते हैं धन से।

क्योंकि चाहिए 'स्व' और भरते हैं 'पर' से।

फिर सब मिल भी जाता है और फिर भी कुछ नहीं मिलता है।

फिर अभाव और गहन होकर प्रकट होता है।

ऐसे क्षण बहुमूल्य हैं; क्योंकि ऐसे क्षण चुनाव और निर्णय के क्षण हैं।

या तो फिर पलायन चुना जा सकता है।

या पलायन के चुनाव से इनकार किया जा सकता है।

पलायन चुना तो फिर वही परिणाम है।

जन्मों-जन्मों तक फिर वही परिणाम है।
अब रुको और पलायन मत चुनो।
अभाव से भागो मत--अभाव में ठहरो।
खालीपन को भरो मत, वरन् स्वयं में खालीपन को ही पूर्णतया भर जाने दो।
और वह क्रांति हो जायेगी जिसका कि नाम संन्यास है।
और वह मिल जायेगा जो कि समस्त अभावों को वाष्पीभूत कर देता है।
लेकिन ध्यान रहे कि यह मात्र बुद्धि में नहीं घटता है।
सोचो मत--**अब जानो--अब अनुभव करो।**
ऐसे भी क्या सोच-विचार कुछ कम किया है!

रजनीश के प्रणाम

२०-१२-१९७०

[प्रति : श्री आर. के. नन्दानी, राजकोट (सौराष्ट्र)]

६७ / ध्यान में पूरा डूबना ही फल का जन्म है

मेरे प्रिय,

प्रेम। जल्दी न करें।
धैर्य रखें।
धैर्य ध्यान के लिए खाद है।
ध्यान को सँभालते रहें।
फल आयेगा ही।
आता ही है।
लेकिन, फल के लिए चिंतित न हों।
क्योंकि वैसी चिन्ता ही फल के आने में बाधा बन जाती है।
क्योंकि वैसी **चिन्ता ही ध्यान से ध्यान को बटा लेती है।**
ध्यान (Meditation) पूरा ध्यान (Attention) माँगता है।
बटाव नहीं चलेगा।
आंशिकता नहीं चलेगी ।
ध्यान तुम्हारी समग्रता ((Totality) के बिना संभव नहीं है।
इसलिए, ध्यान के कर्म पर ही लगो और ध्यान के फल को प्रभु पर छोड़ो।
और फल आ जाता है।
क्योंकि ध्यान में पूरा डूबना ही फल का जन्म है।

रजनीश के प्रणाम

२०-१२-१९७०

[प्रति : श्री रजनीकांत, पोरबन्दर (गुजरात)]

९८ / बीज के अंकुरित होने में समय लगता है

प्रिय कृष्ण चैतन्य,

प्रेम। देखता हूँ--देख रहा हूँ तुम्हारे **धूप-छाँव मन** को।

डगमगाते पैर और बार-बार खोता-मिलता मार्ग--सब देख रहा हूँ।

करुणा आती है--जो कर सकता हूँ--जो किया जा सकता है, वह सब कर भी रहा हूँ। फिर भी जल्दी नहीं कर सकता हूँ।

क्योंकि, **प्रत्येक बीज के फूटने का अपना समय है।**

उसके लिए प्रतीक्षा करनी ही होती है।

और फिर मनुष्य का मन स्व-विरोधी संभावनाओं को एक ही साथ सम्हालने में भी लग सकता है।

तब तो स्थिति और भी जटिल हो जाती है।

क्या तुम स्वयं को दो नावों में एक ही साथ सवार हुआ नहीं देख पा रहे हो?

रजनीश के प्रणाम

२०-१२-१९७०

[प्रति : श्री स्वामी कृष्ण चैतन्य, आजोल]

९९ / जीवन का सत्य अनेकान्त है

मेरे प्रिय,

प्रेम। जीवन खंडित नहीं है--न काल (Time) में, न आकाश (Space) में।

जीवन कुछ है तो अखंडता है--अखंड प्रवाह है।

अतीत, वर्तमान, भविष्य अखंड काल-प्रवाह में खींची गयी मानवीय रेखाएँ हैं--वे वस्तुतः रेखाएँ हैं--वे वस्तुतः कहीं हैं नहीं सिवाय मनुष्य के मन को छोड़ कर।

मन ही समय है (Mind is Time)।

वैसे ही आकाश भी अखंड है।

मैं शरीर पर समाप्त नहीं होता हूँ--वस्तुतः तो समग्रता की सीमा या असीमा ही मेरी सीमा है।

किंतु मन खंड किये बिना नहीं मानता है।

वह है प्रिज्म की भाँति और **खंडन** ही उसका कार्य है।

उससे गुजर कर अस्तित्व की किरण अनेक किरणों और रंगों में विभाजित हो जाती है।

मूल में जो एक है वही शाखाओं में अनेक हो जाता है।

मूल सनातन है--अनादि--अनंत है।

शाखाएँ सामयिक हैं--उनका आदि भी है और अंत भी है।

शाखाएँ परिवर्तन हैं।

मूल नित्य है।

मूल न बदलता है, न बदला जा सकता है।

हाँ--बदलने की आकांक्षा की जा सकती है और तब ऐसी आकांक्षा अनिवार्यतः विफलता और विषाद में ले जाती है।

शाखाएँ बदलती ही रहती हैं।

उन्हें बदलने से नहीं रोका जा सकता है।

लेकिन, वे न बदलें ऐसी आकांक्षा जरूर की जा सकती है और तब ऐसी आकांक्षा अनिवार्य रूपेण विफलता और विषाद में रूपांतरित होती है।

पश्चिम पहले प्रकार की विफलता और विषाद में है।

पूर्व दूसरे प्रकार की विफलता और विषाद में है।

और **अभी तक ऐसी संस्कृति को मनुष्य जन्म नहीं दे पाया है जो सफल ही न हो, सुफल भी हो।**

जिन दो सत्यों की बात मैंने ऊपर कही है--मूल का सत्य और शाखाओं का सत्य--नित्य का नियम और अनित्य का नियम--उन दोनों के समवेत संतुलन पर ही वह संस्कृति पैदा हो सकती है जो कि ध्रुवीय (Polar) नहीं होगी और एकांगी भी नहीं होगी, जो कि विरोधी ध्रुवों के तनाव का उपयोग करेगी, वैसे ही जैसे कि स्थापत्य-कला अर्धवर्तुल द्वार के निर्माण में विरोधी ईंटों का करती है।

जीवन का सत्य अनेकांत है।

और जीवन की धारा सदा विरोधी ध्रुवों को तट मान कर बहती है।

रजनीश के प्रणाम

२२-१२-१९७०

[प्रति : श्री रामकिशोर शर्मा, अध्यापक, डालमिया हा० से० स्कूल, चिड़ावा (राजस्थान)]

७० / बहुत देखे सपने--अब तो जाग

प्यारी राधा,

प्रेम। निकटता और दूरी सब स्वप्न हैं।

सत्य तो है एकता।

इसीलिए तो निकट से निकट होकर भी निकट कहाँ हो पाते हैं ?

और दूर से दूर होकर भी दूर कहाँ हो पाते हैं ?

स्वप्न में सब होता है और फिर भी नहीं होता है इसीलिए तो वह स्वप्न है।

स्वप्न (Dreaming) को तोड़ अब।

बहुत देखे हैं स्वप्न।

जन्मों-जन्मों में।

अब जाग।

सुख भी देखे--दुःख भी देखे।

जन्म भी पाये--मृत्युएँ भी।

लेकिन अब **जीवन** में जाग।

अब **आनंद** में प्रतिष्ठित हो।

निकटता छोड़--दूरी छोड़।

अब तो **एकता** (Unity) खोज।

रजनीश के प्रणाम

२५-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री राधा बहन, इण्डोनेशिया, पोस्ट बाक्स--२३२१, जकार्ता]

७१ / स्वयं में ठहरते ही विश्राम है, शान्ति है

प्रिय योगशांति,

प्रेम। यह जान कर आनंदित हूँ कि तू आनंदित है।

आनंद स्वभाव है।

इसलिए उसकी अभीप्सा है।

दुःख विभाव है।

वह स्वयं से विच्युति है।

इसलिए ही उससे मुक्ति की चेष्टा है।

जो हम नहीं हैं, वह होने में ही पीड़ा है।

जो हम हैं, वह न होने में ही तनाव है।

स्वयं में होते ही स्वास्थ्य है।

स्वयं में ठहरते ही विश्राम है।

स्वयं में आते ही शांति है।

परिधि पर भटकाव है।

केंद्र पर ठहराव है।

उस ठहराव की ही पहली झलक तुझे मिली है।

केंद्र की ही पहली किरण तुझ पर उतरी है।

अब और गहरे में उतरना है।

क्योंकि, जब स्व का केंद्र भी खो जाता है, तभी स्वयं की पूर्ण गहराई उपलब्ध होती है।

रजनीश के प्रणाम

२६-१२-१९७०

[प्रति : मा योगशांति, विश्वनीड़, संस्कारतीर्थ, आजोल, जि० महेसाणा, गुजरात]

७२ / धर्म और सम्प्रदाय के अन्तर्विरोध का रहस्य

प्रिय विमल,

प्रेम। जीने के लिए आज काफी है।

कल क्या होगा——यह चिन्ता सिर्फ आज को नष्ट करती है।

संप्रदाय बनेंगे तो तोड़ने वाले भी पैदा होते रहेंगे।

क्या मेरे जैसे तोड़ने वालों को काम बिलकुल ही बंद कर देना है?

बनाना भी पड़ता है और तोड़ना भी पड़ता है।

तोड़ना भी पड़ता है और बनाना भी पड़ता है।

और जो दोनों को एक ही सिक्के के दो पहलू की भाँति देख पाते हैं, वे दोनों से ही मुक्त हो जाते हैं।

और धर्म को, सत्य को, अस्तित्व को जानने के लिए समस्त द्वैतों का अतिक्रमण आवश्यक है।

रूढ़ि मृत सत्यों का नाम है।

लेकिन, जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु भी है।

इस डर से कि कल कब्र बनानी होगी, जन्म देना तो बंद नहीं किया जा सकता है?

और न ही मृत शवों को जीवित ही माना जा सकता है, क्योंकि वे कभी जीवित थे।

जन्म भी होगा और मृत्यु भी होगी।

धर्म जन्मता है और फिर मर कर संप्रदाय भी बनता है।

संप्रदायों को मरघट भी पहुँचाना होता है।

और फिर धर्म जन्मता है और फिर संप्रदाय बनता है।

जो धर्म के लिए संप्रदायों से लड़ते हैं, वे ही अंततः नये संप्रदायों के जनक हो जाते हैं।

और फिर जिन्हें धर्म की अवतारणा करनी है, उन्हें अतीत के स्वजातीय व्यक्तियों से ही लड़ने का नाटक करना होता है!

उपनिषद् वेद से लड़ने का नाटक करते हैं!

इसीलिए उनका नाम है वेदान्त अर्थात् वेद का अंत करनेवाला !
कैसा मज़ा है !
वेद को ही वे पुनर्प्रतिष्ठित करते हैं और वेद से ही लड़ते हैं !
बुद्ध उपनिषदों से लड़ते हैं !
और बुद्ध से बड़ा वेदान्ती नहीं हुआ है !
और शंकर बुद्ध से लड़ते हैं; और शंकर से बड़ा बौद्ध कौन है ?

रजनीश के प्रणाम

२७-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री विमला मेहता, डी १९२ (डी १९३), डिफेंस कालोनी, नयी दिल्ली]

७३ / प्रेम असुरक्षा में छलाँग है

मेरे प्रिय,

प्रेम । प्रेम है तो प्रश्न नहीं है ।
क्योंकि प्रेम सदा ही सब कुछ खोने को तैयार होता है ।
लेकिन यदि प्रेम नहीं है तो फिर प्रश्न ही प्रश्न है ।
ऐसा हो तो ही सांत्वनादि की आवश्यकता है ।
प्रेम तो है पागल ।
या कहें : है अंधा ।
लेकिन, प्रेमरिक्त समझदारी से प्रेम का पागलपन अनंतगुना शुभ है ।
और प्रेमरिक्त आँखों से प्रेम का अंधापन अनंतगुना वरणीय है ।
लेकिन, **वह है तो है और नहीं है तो नहीं है।**

उस संबंध में स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि वैसा पागलपन—वैसा अंधापन है या नहीं है ।

क्योंकि, प्रेम न हो और सिर्फ पागलपन हो या प्रेम न हो और सिर्फ अंधापन हो, तो समाज की बात ध्यानपूर्वक सुननी चाहिए; क्योंकि फिर अन्ततः समाज ही सही सिद्ध होता है ।

और ध्यान रहे कि प्रेम इतने सोच-विचार में नहीं पड़ता है ।
प्रेम है कुछ, तो जोखिम है ।
वह अज्ञात के हाथों में स्वयं को समर्पित करना है।
प्रेम असुरक्षा (Insecurity) **में छलाँग है।**
समाज है सुरक्षा (Security System) की व्यवस्था ।
इसलिए संघर्ष स्वाभाविक है ।
लेकिन, जैसा दिखाई पड़ता है वैसा संघर्ष **स्वयं और समाज के बीच** नहीं है ।
संघर्ष है स्वयं की ही सुरक्षा-असुरक्षा के बीच।
प्रेम है तो समाज कहाँ है ?
प्रेम नहीं है तो समाज के अतिरिक्त और क्या है ?

रजनीश के प्रणाम

२७-१२-१९७०

[प्रति : श्री पी० गुप्ता, (असिस्टेंट इंजीनियर), १७४, वल्लभवाड़ी, कोटा (राज०)]

७४ / प्रेम और ध्यान--एक ही सत्य के दो छोर

प्रिय कचु,

प्रेम । ध्यान का जल सींचते रहो ।

संन्यास का फूल तो खिलेगा ही ।

लेकिन, सतत प्रयास चाहिए ।

हृदय की धड़कन-धड़कन में ध्यान का नाद भरना है ।

संन्यास सरल है, लेकिन सस्ता नहीं है ।

और सरल है, इसीलिए सस्ता नहीं है ।

क्योंकि, जीवन में सरलतम को पाना ही कठिनतम है ।

मीरा ने कहा है : 'अंसुअन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई ।'

मीरा के लिए प्रेम ही ध्यान है ।

तुम्हारे लिए ध्यान ही प्रेम होगा ।

ऐसे दोनों ही, एक ही सत्य के दो छोर हैं ।

रजनीश के प्रणाम

२७-१२-१९७०

[प्रति : श्री बी० व्ही० तुरखिया, ३८१, रविवार पेठ, पूना (महाराष्ट्र)]

७५ / सफलता और असफलता-एक ही सिक्के के दो पहलू

मेरे प्रिय,

प्रेम । असफलता के प्राण स्वयं में नहीं होते हैं ।

इसलिए, असफलता को मार-मार कर भी आदमी असफलता को नहीं मार पाता है ।

न तुम ही मार पाओगे ।

ऐसी कहानियाँ तो जरूर पढ़ी होंगी न, जिसमें कोई राक्षस अपने प्राण किसी तोते में या कहीं और रख देता है और फिर तब तक नहीं मारा जा सकता है जब-तक कि उसके प्राण को सुरक्षित रखने वाला पशु या पक्षी नहीं मारा जाता है ।

असफलता भी ऐसे ही सुरक्षित है ।

उसके प्राण उसमें स्वयं में नहीं हैं ।

उसके प्राण हैं : **सफलता की अभीप्सा में ।**

इसलिए जो भी सफलता चाहता है वह असफलताओं से मुक्त नहीं हो सकता है ।

क्योंकि, असफलता से तो केवल वे ही मुक्त होते हैं **जो कि सफलता से ही मुक्त हो जाते हैं ।**

और तुमने लिखा है कि असफलताओं के कारण हीन-भाव (Inferiority Complex) बढ़ रहा है ।

नहीं, बंधु ! तुम्हारा विश्लेषण **बैलों को गाड़ी के पीछे** जोत रहा है ।

असफलताओं के कारण हीनता नहीं बढ़ती है; विपरीत **हीनता के कारण ही सफलता चाही जाती है और सफलता बनती है ।**

लेकिन, हीन क्यों अनुभव करते हो ?

प्रत्येक, प्रत्येक है ।

अद्वितीय, बेजोड़, अतुलनीय (Incomparable) ।

तुलना ही असंभव है ।

पर तुलना सिखायी जाती है ।

तुलना (Comparison) संस्कारिता की की जाती है ।
इस गलत, घातक और अज्ञानपूर्ण संस्कार (Conditioning) को समझो ।
क्योंकि, गलत को गलत जान लेना ही उससे मुक्त हो जाना है ।

रजनीश के प्रणाम

२७-१२-१९७०

[प्रति : श्रीयुत् आत्म विजय, २-४ नव अभियन्ता छात्रावास, पटना-५]

७६ / अनेकता में एकता

मेरे प्रिय,

प्रेम । सागर तो एक ही है ।
और इसलिए अनेक दिखाई पड़ने वाली लहरें भी अनेक नहीं हो सकती हैं ।
प्रत्येक लहर में एक ही सागर है ।
वही आता है, वही जाता है ।
लहरों से तो बस उसके इस आने-जाने की पगध्वनि ही दिखाई पड़ती है ।
लहरें नहीं ही हैं ।
सागर ही है ।
लेकिन लहरें दिखाई पड़ती हैं और सागर अदृश्य है ।
शब्द दिखाई पड़ते हैं, सत्य अदृश्य है ।
शरीर दिखाई पड़ते हैं, अस्तित्व अदृश्य है ।

रजनीश के प्रणाम

२७-१२-१९७०

[प्रति : श्री लाल प्रताप, गाँव-भुड़हा, पोस्ट-सांगीपुर,
जिला-प्रतापगढ़-अवध (उ० प्र०)]

७७ / स्वयं को सम्हालने की पागल-चिंता

मेरे प्रिय,

प्रेम । सागर सम्हालता है लहरों को ।
और, लहरें सदा निश्चिन्त हैं ।
आकाश सम्हालता है तारों को ।
और तारे सदा आनंदित हैं ।
लेकिन मनुष्य चिंतित होता है ।
दुःख में डूबता है ।
संताप में घिरता है ।
क्योंकि, मनुष्य स्वयं को स्वयं ही सम्हालने के पागलपन में पड़ता है ।

रजनीश के प्रणाम

२७-१२-१९७०

[प्रति : श्री नारायण के० भट्ट, सेठ गो० ने० स्मा० महाशाला, कोठारा (कच्छ)]

७८ / स्वयं को खो देना ही सब-कुछ पा लेना है

प्यारी रमा,

प्रेम । स्वयं को खो देना ही सब-कुछ पा लेना है ।
लेकिन, वह खोना होना चाहिए **समग्र** (Total) ।
क्योंकि, स्व अंश भी बचा तो पूर्ण ही बच जाता है !
या तो वह होता है शून्य या होता है पूर्ण ।
बीच में कोई मार्ग नहीं है ।
स्वयं के लिए कोई मज्झिम निकाय (Middle way) नहीं है ।

रजनीश के प्रणाम

२७-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री रमा पटेल, ३, न्यू अमृत कुंज फ्लैट्स,
दूसरी मंजिल, पंचवटी, अहमदाबाद-६]

७९ / संसार को लीला मात्र जानना संन्यास है

प्यारी हंसा,

प्रेम । **संसार आनंदपूर्ण अभिनय बन जाये तो संन्यास फलित होता है।**

संसार को बोझ रूप ढोना गार्हस्थ्य है ।

संसार को लीला मात्र जानना संन्यास है।

संन्यास संसार का विरोध नहीं है ।

वरन्, संसार के प्रति दृष्टि का रूपान्तरण है ।

और सब कुछ——सुख-दुःख, राग-द्वेष, यश-अपयश——सभी कुछ दृष्टि के बदलते ही बदल जाते हैं ।

दृष्टि——जीवन को देखने का ढंग ही जीवन का आकार बन जाता है ।

संन्यास विवाद भी नहीं है ।

मेरे देखे तो **संसार को संन्यास की दृष्टि से न देखने से ही विवाद उत्पन्न होता है।**

संन्यास तो परम रस है——परम भोग है ।

क्योंकि, संन्यास परमात्मा का साझीदार होना है ।

लेकिन बहुत बार कंकड़-पत्थरों का मोह हीरों की खदान तक ही नहीं पहुँचने देता है ।

पर तुझे मैं छोड़ूँगा नहीं ।

हीरों की खदान निकट है और तुझे वहाँ तक पहुँचना ही है ।

रजनीश के प्रणाम

२७–१२–१९७०

[प्रति : सुश्री हंसा मणिकान्त खोना, २६२।२७०, नरसी मेहता रोड, बम्बई-९]

८० / शरीर में रस कहाँ–रस तो है आत्मा में

प्यारे मणिकांत,

प्रेम । रस का तुम्हें शायद पता ही नहीं है !

लेकिन, प्यास है तो भी पर्याप्त है ।

शरीर में रस कहाँ——सिर्फ रस का प्रतिफलन ही है ।

रस तो है आत्मा में ।

या कि उचित होगा कि कहें कि **आत्मा ही रस है।**

उसके रस की अनुगूंज ही शरीर में सुनाई पड़ती है ।

अनुगूँज को पकड़ो और मूल स्रोत को खोजो ।

अन्यथा क्रमशः शरीर शिथिल होता है और फिर वह अनुगूंज सुनाई नहीं पड़ती है ।

शरीर का यही **दुःख** है ।

भोग की यही तो **पीड़ा** है ।

इंद्रियों का यही तो **संताप** है ।

इसलिए समय रहते——शक्ति रहते उसे खोज ही लेना चाहिए जो कि वास्तविक रस है ।

अन्यथा, पीछे पछतावे के अतिरिक्त और कुछ भी शेष नहीं रह जाता है ।

और, "फिर पछताये होत का जब चिड़िया चुग गई खेत।"

रजनीश के प्रणाम

२७–१२–१९७०

[प्रति : श्री मणिकान्त खोना, २६२।२७०, नरसी मेहता स्ट्रीट, बम्बई-९]

८१ / जो समय पर हो वही शुभ है

मेरे प्रिय,

प्रेम। देरी जरा भी नहीं है।
प्रभु के द्वार पर देरी कहाँ ?
लेकिन, प्रतीक्षा आवश्यक है--**तुम्हारे ही हित में प्रतीक्षा आवश्यक है।**
आनंद भी अनायास झेला नहीं जा सकता है।
और शक्ति का अनायास अवतरण भी सह्याला नहीं जा सकता है।
इसलिए समय चाहिए।
प्रत्येक घटना के लिए समय चाहिए।
बीज टूटने में समय लगता है।
अंकुर फूटने में समय लगता है।
वृक्ष बनने में समय लगता है।
और फलों के आने में समय लगता है।
फिर फलों के पकने में भी समय लगता है।
और जो समय पर हो वही शुभ है।

रजनीश के प्रणाम

२७-१२-१९७०

[प्रति : श्री आर० एन० ऐरन, ६ गणेश सोसायटी, शाहपुर दरवाजा के बाहर, अहमदाबाद-१]

८२ / जियें--आज और अभी और यहीं

मेरे प्रिय,

प्रेम। जीवन को हम जानते ही नहीं हैं; इसीलिए ऊब जाते हैं।
जीवन को बना लेते हैं एक यांत्रिकता, इसीलिए ऊब जाते हैं।
जीवन को जीते कहाँ हैं--बस ढोते हैं; इसीलिए ऊब जाते हैं।
ऊब (Boredom) जीवन में नहीं, वरन् हमारे जीने के भय से आती है।
हम मृत्यु से ही नहीं डरते--जीवन से भी डरते हैं !
वस्तुतः तो मृत्यु से भी इसीलिए डरते हैं; क्योंकि जीवन से डरते हैं।
अन्यथा मृत्यु जीवन का अंत नहीं--जीवन की पूर्णता है।
इसलिए मैं कहता हूँ : जियें--निर्भय होकर जियें।
अतीत को बिदा करें--भय के कारण ही मनुष्य उसे सम्हाले रहता है।
और भविष्य के सपनों को आमंत्रित न करें; क्योंकि आज जीने से बचना है, इसलिए मनुष्य भविष्य में जीने की योजना करता है।
जियें आज और अभी और यहीं।
कल धोखा है।
बीता हुआ भी और आने वाला भी।
क्षण ही सत्य है।
और क्षण ही शाश्वत है।

रजनीश के प्रणाम

२८-१२-१९७०

[प्रति : श्री गिरधर आर० उकाजी, द्वारा--भारतीय औषध निर्माणशाला, भक्ति नगर, स्टेशन रोड, राजकोट-२ (गुज०)]

८३ / प्रभु के लिए पागल होना एक कला है

मेरे प्रिय,

प्रेम । प्रभु के लिए पागल होना एक कला है ।

वह विधिपूर्वक पागलपन है ।

इसलिए पागल बनो जरूर––लेकिन विधि न भूलो ।

उस विधि को ही मैं **ध्यान** कहता हूँ ।

मीरा उसे **प्रेम** कहती है ।

महावीर **तप** कहते हैं ।

नाम दो कुछ भी––लेकिन उसे भूलो भर मत ।

क्योंकि मन उसे भूलना चाहता है ।

वह मन की मृत्यु जो है ।

और पता है कि मन की ध्यान को भूलने की सरलतम लेकिन सबसे चालाक (Cunning) विधि क्या है ?

ध्यान के संबंध में सोचना (To think ABOUT meditation) ।

इसलिए ध्यान रखना कि ध्यान के संबंध में सोचना नहीं है, ध्यान करना है।

रजनीश के प्रणाम

२८–१२–१९७०

[प्रति : श्री पी० ओ० ईगले, सिद्धार्थ विद्यालय, **संगमनेर,** अहमदनगर (महा०)]

८४ / जीवन–रहस्य जीकर ही जाना जा सकता है

मेरे प्रिय,

प्रेम । जीवन है रहस्य (Mystery) ।

उसे जिया जा सकता है ।

और **जीकर** जाना भी जा सकता है ।

लेकिन गणित के सवालों की भाँति उसे हल नहीं किया जा सकता है ।

वह सवाल नहीं है––वह है एक **चुनौती** (Challenge) ।

वह प्रश्न नहीं है ––वह है एक **अभियान** (Advemture) ।

इसलिए जो जीवन के संबंध में मात्र प्रश्न ही पूछते रहते हैं, वे उत्तर से सदा के लिए अपने ही हाथों वंचित रह जाते हैं ।

या कि ऐसे उत्तर पा लेते हैं जो कि उत्तर नहीं हैं ।

शास्त्रों से ऐसे ही उत्तर मिल जाते हैं ।

असल में दूसरे से मिला उत्तर उत्तर नहीं हो सकता है ।

क्योंकि जीवन-सत्य **उधार** नहीं मिलता है ।

या फिर मात्र प्रश्न पूछने वाले अपने ही उत्तर गढ़ लेते हैं ।

ऐसे उन्हें **सांत्वना** (Consolation) तो मिल जाती है, लेकिन समाधान नहीं मिलता है ।

क्योंकि, गढ़े हुए उत्तर भी उत्तर नहीं हैं ।

उत्तर तो केवल **जाने** हुए उत्तर ही हो सकते हैं ।

इसलिए कहता हूँ : पूछो नहीं—**जियो और जानो।**

दर्शन (Philosophy) और धर्म (Religion) का यही भेद है ।

दर्शन पूछना है और धर्म जीना है।

और, मजा तो यह है कि दर्शन पूछना जरूर है, लेकिन उत्तर कभी नहीं पाता है और धर्म पूछना बिलकुल नहीं है और फिर भी उत्तर पा लेना है ।

रजनीश के प्रणाम

२८–१२–१९७०

[प्रति : श्री हरीश के० राज, बी०–३, मोहल्ला क्वाजियन, पुराना बाजार, लुधियाना (पंजाब)]

८५ / प्रभु-प्रेम की धुन हृदय-हृदय में गुँजा देनी है

प्यारी मीरा,

प्रेम । प्रभु-प्रेम की धुन हृदय-हृदय में गुँजा देती है ।
मनुष्य का हृदय-मंदिर रिक्त और सूना होकर पड़ा है ।
तर्क की राख के अतिरिक्त वहाँ और कुछ भी नहीं है ।
और हृदय कोई ऐश-ट्रे तो है नहीं कि इस राख से प्रफुल्लित हो उठे ?
हृदय को चाहिए फूल प्रेम के--प्रार्थना के--परमात्मा के ।
हृदय को चाहिए संगीत--आत्मा का--अदृश्य का--अमृत्व का ।
हृदय को चाहिए सोम--आलोक का--आनंद का--अनुग्रह का ।
जा--प्यासों के पास ।
गा और उनके हृदयों पर प्रभु-प्रार्थना की वर्षा कर ।
नाच और उन्हें भी उस नृत्य में निमंत्रित कर ले ।
स्वयं में मीरा को पुनर्जन्म दे ।
वही है तेरी नियति ।
उसी के लिए तुझे मैंने पुकारा है ।
डा० को प्रेम ।

रजनीश के प्रणाम

२८-१२-१९७०

[प्रति : मा० योग मीरा--(सुश्री जयवंती), द्वारा—डा० हेमन्त शुक्ल, काठियावाड, जूनागढ़, (गुजरात)]

८६ / आता रहूँगा—तुम्हारी नींद जो तोड़नी है

मेरे प्रिय,

प्रेम । आऊँगा--नींद में भी आऊँगा ।
क्योंकि, तुम्हारी नींद जो तोड़नी है ।
स्वप्न में भी प्रवेश करूँगा क्योंकि तुम्हें स्वप्नों से मुक्त जो करना है ।
वैसे--जिसे तुम जागना कहते हो, क्या वह जागना है ?
या कि नींद का ही एक और रूप मात्र ?
आँखें खुली होने से ही तो जागना नहीं होता है ?
काश ! जागना इतनी सरल बात होती !
और, आँखें खुली होने से ही तो स्वप्न बंद नहीं होते हैं ?
साधारणतः तो हमारा जागना जागने का भ्रम मात्र ही है।
और हमारी तथाकथित विचारणा स्वप्नों का शब्दों में अनुवाद है ।
लेकिन नींद को पहचानो तो नींद टूटनी शुरू हो जाती है ।
और स्वप्नों के प्रति सजग बनो तो स्वप्न तिरोहित होने लगते हैं।
और जहाँ स्वप्न नहीं है--जहाँ निद्रा नहीं है वहीं माया नहीं है ।
और जहाँ माया नहीं है, वहीं वह है जिसकी कि खोज है ।

रजनीश के प्रणाम

२८-१२-१९७०

[प्रति : श्री सरदारीलाल सहगल, न्यू मिस्त्री बाजार, अमृतसर (पंजाब)]

८७ / विचार नहीं, ध्यान है द्वार

मेरे प्रिय,

प्रेम । तत्त्व-चिंतन (Philosophy) में समय न गँवाओ ।

अस्तित्व की गहराइयों में है समाधान ।

और विचार की तरंगें सतह से गहरी नहीं जाती हैं ।

हीरे हैं सागर की गहराइयों में और इसलिए जो उन्हें लहरों के भाग में खोजता है वह व्यर्थ ही खोजता है ।

दर्शन-शास्त्र विचार की लहरों पर उठे झाग से ज्यादा नहीं है ।

माना कि कभी सूर्य की किरणों में चमकता सफेद झाग भी बहुत सुन्दर मालूम होता है; लेकिन फिर भी वह झाग ही है और मुट्ठी में लेते ही खो जाता है ।

इसलिए कहता हूँ : **विचार नहीं, ध्यान है द्वार ।**

शब्द नहीं, शून्य है द्वार ।

अस्तित्व क्यों है यह मत पूछो ।

अस्तित्व क्या है यह खोजो ।

रजनीश के प्रणाम

२८-१२-१९७०

[प्रति : श्री दिनेश आर० शाह, जूना बाजार, मिया गाँव, करजन, जि० बड़ौदा (गुजरात)]

८८ / जन्मों-जन्मों की खोज

प्रिय भानु,

प्रेम । जन्मों-जन्मों की खोज के बाद प्रभु-मंदिर का मार्ग मिलता है ।

लेकिन, अनेक बार मार्ग पाकर भी हम उसे खो देते हैं ।

आज तू उसी मार्ग के द्वार पर आकर खड़ी हो गयी है ।

अब भटक मत जाना ।

संकल्प कर और आगे बढ़ ।

अनेक प्रलोभन रोकेंगे ।

अनेक संस्कार रोकेंगे ।

आलस्य रोकेगा ।

मन, और विकल्प सुझायेगा ।

इन सबसे सावधान रहना ।

क्योंकि, **जिस द्वार को जन्मों में पाया उसे क्षण में खोया जा सकता है।**

अज्ञान का भय घेरेगा ।

अनजान में उतरते असुरक्षा मालूम होगी ।

लेकिन, **साहस कर और अपरिचित को आलिंगन कर।**

क्योंकि, यह अपरिचित ही—यह अज्ञात ही उसका द्वार है।

रजनीश के प्रणाम

२८-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री भानुमति पी० कटारिया, ए ८।३११, नेहरू नगर, कुरला, बम्बई-७०]

८९ / प्रेम के अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं है

प्रिय शिव,

प्रेम । **प्रेम सदा ही अकारण है ।**

और इसलिए जिस प्रेम में कारण होता है वह प्रेम नहीं रह जाता है ।

प्रेम सौदा नहीं है ।

वह लेन-देन के व्यवसाय-जगत् के बाहर है ।

और यही उसका सौंदर्य है ।

इस पार्थिव पृथ्वी पर **प्रेम अपार्थिव की किरण है ।**

इसलिए प्रेम के सहारे प्रार्थना तक पहुँचा जा सकता है ।

और प्रार्थना के सहारे प्रभु तक ।

इसीलिए मैं कहता हूँ कि प्रेम के अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं है ।

रजनीश के प्रणाम

२८-१२-१९७०

[प्रति : श्री शिव, ज़ेड-२१७/सी, अपर लाइन्स, जबलपुर (म० प्र०)]

९० / चेतना चाहिए-खुली, उन्मुक्त, प्रतिपल नवीन

मेरे प्रिय,

प्रेम । सिद्धान्तों का अंततः मूल्य नहीं है ।

मूल्य है अनुभूतियों का ।

और अक्सर ही सिद्धान्त अनुभूति-प्रवेश में बाधा बन जाते हैं ।

क्योंकि सिद्धान्त मात्र चेतना को बंद करते हैं ।

और चेतना चाहिए खुली—उन्मुक्त—नये के लिए उन्मुख ।

चेतना चाहिए अज्ञात का स्वागत करती—अनजान—अपरिचित सत्य के आलिंगन को तत्पर ।

और यह जान कर आनंदित हूँ कि ऐसी चेतना आपके पास है ।

यह बड़ी संपदा है और सत्य के खोजी के लिए अनिवार्य पाथेय है ।

सत्य वाद में न है—न हो सकता है ।

सत्य और शास्त्र का कभी मिलन ही नहीं हो पाता है ।

वाद होते हैं अति सकरे ।

शास्त्र होते हैं अति सीमित ।

और शब्दों में सत्य के लिए स्थान (Space) ही कहाँ है ?

रजनीश के प्रणाम

२९-१२-१९७०

[प्रति : श्री एम० डी० शाह, ह्युमैनिस्ट सेन्टर, जेकोर बिल्डिंग, सेन्ट झावीयर कालेज के सामने, जीमखाना गेट, परेल, बम्बई-१२ डी० डी०]

मेरे प्रिय,

प्रेम । न जन्म है, न मृत्यु है ।

बस जीवन है ।

अनादि, अनंत ।

वह जन्म के पूर्व भी है ।

अन्यथा, जन्मता कौन ?

वह मृत्यु के बाद भी है ।

अन्यथा, मरता कौन ?

जन्म जीवन का आरंभ नहीं है ।

मृत्यु जीवन का अंत नहीं है ।

जन्म और मृत्यु **जीवन में** घटी घटनाएँ हैं ।

जैसे पानी का बबूला नदी में बनता और मिटता है ।

ऐसे ही व्यक्ति का बबूला जीवन में बनता और मिटता है ।

इस बबूले का नाम ही अहंकार है।

निश्चय ही इसका जन्म भी है और इसकी मृत्यु भी है ।

जन्म और मृत्यु के बीच में जो घटता है उसका ही नाम अहंकार है।

इसलिए ही जो अहंकार (Ego) में है, वह जीवन से अपरिचित ही रह जाता है।

जीवन को जानना है तो अहंकार से जागना होता है ।

बबूला भूल ही जाता है कि वह नहीं है, बस सरिता ही है ।

रजनीश के प्रणाम

२९-१२-१९७०

[प्रति : श्री एन० सी० जैन, लेक्चरर, गर्व० सेकेण्ड्री स्कूल, पृथ्वीपुर, टीकमगढ़ (म० प्र०)]

मेरे प्रिय,

प्रेम । जब भी जरूरत हो, मुझे पुकारना—मैं आ जाऊँगा ।

अब शरीर का ही संबंध नहीं—आत्मा का सीधा संबंध भी स्थापित हो गया है।

प्रारंभ स्वप्न से होगा और फिर खुली आँखों और जागते हुए भी दिखाई पड़ने लगूँगा ।

लेकिन, **अकारण** मत पुकारना ।

न ही मात्र **कुतुहलवश** पुकारना ।

न ही **भौतिक कारणों** के लिए पुकारना ।

जहाँ सुई से काम हो सके वहाँ तलवार नहीं उठानी चाहिए न ?

रजनीश के प्रणाम

२९-१२-१९७०

[प्रति : श्री दत्ताराम भाटिया, पार्टनर,-दत्ताराम रामलाल, ३६३, कत्था बाजार, **बम्बई-९**]

९३ / सत्य है—समझ के पार

प्रिय शिव,

प्रेम । जो समझ में आ जाये, वह प्रेम नहीं है ।

फिर समझ सब-कुछ तो नहीं है !

समझ के बाहर भी बहुत-कुछ है ।

और जो समझ के बाहर है वही गहरा भी है ।

समझ है सतह ।

समझ सदा ही ऊपर-ऊपर है ।

और इसलिए जो समझ पर ही रुक जाते हैं, उनसे ज्यादा नासमझ और कोई भी नहीं है ।

लहरें समझी जा सकती हैं ।

सागर अबूझ है ।

इसलिए समझो जरूर——लेकिन समझ को स्वयं की सीमा न समझो ।

उसके पार भी झाँकते रहो ।

उसका अतिक्रमण भी करते रहो ।

समझ का उल्लंघन ही अन्ततः सत्य की समझ बनता है ।

रजनीश के प्रणाम

२९–१२–१९७०

[प्रति : श्री शिव, जेड–२१७ सी, अपर लाइन्स, जबलपुर (म० प्र०)]

९४ / प्रभु-समर्पित कर्म, अकर्म है

प्रिय योग सिद्धि,

प्रेम । एक बार स्वयं को परमात्मा के हाथ में छोड़ते ही कुछ भी करने को शेष नहीं रह जाता है ।

फिर तो सब जैसे स्वयं ही होने लगता है ।

आनंदित हो कि तेरे जीवन में अब उसी का प्रारंभ है ।

तैरना छूटा और बहना शुरू हुआ है ।

मैं इसी भाव-दशा को संन्यास कहता हूँ ।

सरिता स्वयं ही सागर में लिये जाती है——फिर तैरना किसलिए ?

प्रयत्न किसलिए——प्रयास किसलिए ?

अप्रयास (Effortless) **में ही प्रसाद** (Grace) है ।

लेकिन इसका अर्थ निष्क्रियता नहीं है ।

बहना भी सक्रियता है ।

लेकिन उसमें कर्त्ता की अनुपस्थिति है ।

कर्म है और कर्त्ता नहीं है तो अकर्म है ।

और कर्म नहीं है और कर्ता है तो भी अकर्म नहीं है ।

प्रभु-समर्पित कर्म अकर्म है ।

रजनीश के प्रणाम

२९–१२–१९७०

[प्रति : मा योग सिद्धि, ४६।८, म्युनिसिपल स्टाफ क्वार्ट्र्स, शाहपुर, अहमदाबाद (गुजरात)]

९५ / अहंकार निर्बलता है, आत्मा बल है

मेरे प्रिय,

स्वयं ही स्वयं का आत्मबल नहीं बढ़ाया जा सकता है।

वह तो वैसे ही है जैसे कि कोई अपने ही जूतों के फीतों को पकड़ कर स्वयं को ऊपर उठाना चाहे।

आत्म-बल बढ़ता है : प्रभु के प्रति समर्पण से।

समर्पण के अतिरिक्त शक्ति का और कोई द्वार नहीं है।

मिटने के अतिरिक्त पाने की और कोई विधि नहीं है।

बीज मिट कर वृक्ष होता है।

अहं की मृत्यु से आत्मा प्रकटती है।

और अहंकार निर्बलता है; आत्मा बल है।

आत्म-बल शब्द ठीक नहीं है, क्योंकि आत्मा ही बल है।

रजनीश के प्रणाम

३०-१२-१९७०

[प्रति : श्री मांगीलाल भटनागर, प्रधानाध्यापक, शास० उ० प्रा० विद्यालय पो० पीपल्या, जि०-झालावाड रोड, (पश्चिम रेलवे), राजस्थान]

९६ / जीने के लिए आज पर्याप्त है

मेरे प्रिय,

प्रेम। उद्देश्य से जीने वाला सदा ही भटक जाता है।

और उद्देश्य से जीने वाले का जीवन बोझ भी बन जाता है।

क्योंकि, **उद्देश्य है कल और जीना है आज।**

व्यर्थ के तनाव न पालो।

व्यर्थ के विवाद न सींचो।

भविष्य से वर्तमान न निकालो।

क्योंकि, वह संभव ही नहीं है।

वर्तमान से ही भविष्य को निकलने दो।

सहज ही वह चला आता है।

उसके लिए तुम्हें कुछ भी नहीं करना है।

तुम तो जियो आज।

जीने के लिये **आज पर्याप्त है।**

न्यूमेन ने गाया है : "I do not long for the distant scene· One step is ENOUGH for me·" (—दूर के दृश्य की आकांक्षा नहीं मुझे, और बस एक ही कदम काफी है)।

हाँ—मरने के लिए जरूर आज पर्याप्त नहीं है !

मृत्यु के लिए कल जरूरी है !

इसलिए जो कल (Tomorrow) में जीते हैं, वे जीते नहीं बस मरते ही हैं !

जियो आज—अभी—पूर्णता से—समग्रता से।

कल स्वयं ही अपनी चिंता कर लेगा।

रजनीश के प्रणाम

३०-१२-१९७०

[प्रति : श्री राजेन्द्र सिंह, एम० ए०, एल-एल०बी०, पो० झिरिया, तह० जि०-जबलपुर (म० प्र०)]

९७ / तैयार होकर आ

प्यारी रोशन,

प्रेम। दिखाई पड़ने वाली आँखों के अलावा और भी आँखें हैं।

उन्हीं से मैंने तुम्हें देखा।

और दिखाई पड़ने वाले कानों के अलावा और भी कान हैं, उन्हीं से मैंने तुझे सुना।

शरीर से नहीं, पर हृदय से तुझे स्पर्श किया है।

ध्यान में उतरेगी तो यह सब तेरी समझ में भी आ सकेगा।

इन्द्रियों के पार भी अस्तित्व है——विराट्, अनादि और अनंत।

उस सब का ही इकट्ठा नाम परमात्मा है।

उस परमात्मा की यात्रा पर ही तुझे ले चलना है।

तैयार होकर आ।

क्योंकि, मेरे पास आने का और तो कोई भी अर्थ नहीं है न?

रजनीश के प्रणाम

३०-१२-१९७०

[प्रति : कुमारी रोशन जाल, फीरोजशाह एण्ड कं०, पंचवटी के पास, उदयपुर (राज०)]

९८ / मार्ग के पत्थरों को सीढ़ियाँ बना

प्यारी पुष्पा,

प्रेम। आगे बढ़ो——भय न करो!

मैं साथ हूँ।

परमात्मा साथ है।

फिर निष्पाप तेरा चित्त है।

और ध्यान-विस्फोट का क्षण भी निकट है।

भीतर जो कुछ भी हो रहा है——वह सब उसी क्षण की पूर्व तैयारी है।

बाधाएँ जो प्रतीत होती हैं, वे बाधाएँ नहीं हैं।

वे परीक्षाएँ हैं।

मार्ग पर जो पत्थर मिलते हैं वे शत्रु नहीं, मित्र हैं।

उन्हीं को सीढ़ियाँ बनाना है।

वे सीढ़ियाँ बनने के लिए ही, मार्ग पर हैं।

फिर जरूरत होगी तो मैं धक्का भी दूंगा!

लेकिन, वह तू मुझ पर छोड़।

उसकी चिंता तुझे नहीं लेनी है।

रजनीश के प्रणाम

३०-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री पुष्पा, मकान नं० एन० के० १८१, चरणजीतपुरा, जालंधर शहर (पंजाब)]

९९ / व्यक्ति-चित्त के आमूल रूपान्तरण से ही समाज में शांति

मेरे प्रिय,

प्रेम । **समाज** केवल जोड़ है ।

व्यक्तियों का ।

इसलिए **अंततः और मूलतः वह व्यक्तियों के चित्तों का ही प्रतिफल है।**

व्यक्ति-चित्त अशांत है तो समाज शांत नहीं हो सकता है ।

व्यक्ति-चित्त (Individual-Mind) **का आमूल रूपान्तरण** (Mutation) **ही समाज की शांति बन सकती है।**

और कोई विकल्प नहीं है ।

और न ही कोई शार्टकट (निकट का रास्ता) ही है ।

व्यक्ति-रूपान्तरण की विधि ध्यान है।

अधिक से अधिक व्यक्ति ध्यान में उतरें तो ही कुछ हो सकता है ।

क्योंकि अधिक से अधिक व्यक्ति आनंद में प्रवेश करें तो ही कुछ हो सकता है।

प्रभु-शरण ही उपाय है ।

रजनीश के प्रणाम

३०–१२–१९७०

[प्रति : श्री एल० एच० वैद्य, एम० बी०, बी० एस०, द्वारा–श्री आर० जे० वाला, बी० ई०, संघाड़िया बाजार, मोची गली, जूनागढ़ (गुजरात)]

१०० / एक मात्र उत्तर–हँसना और चुप रह जाना

मेरे प्रिय,

प्रेम । मुझे सबकी याद रहती है—आती नहीं ।
न रहे तब ही याद को आना पड़ता है ।
आने में पीड़ा है ।
क्योंकि, आने में जाना भी छिपा है ।
रहने में आनंद है।
क्योंकि, फिर न आना है, न जाना है।
शायद यह बात समझ में भी न आये ।
मुझे भी कोई समझाता तो समझ में न आती ।
बहुत कुछ है जो कि समझने से समझ में आता ही नहीं है।
उल्टे और भी उलझ जाता है।
लेकिन, जैसा है वैसा मैं कह रहा हूँ ।
किसी को भी कभी याद नहीं करता हूँ; फिर भी याद बनी रहती है।
हृदय की धड़कनों की भाँति ।
जानूँ या न जानूँ हृदय तो धड़कता ही रहता है ।
या श्वासों की भाँति ।
लूँ या न लूँ श्वासें तो चलती ही रहती हैं ।
बस ऐसी ही मेरी याद है।
इसलिए, जब कोई पूछता है : 'कभी मुझे याद करते हैं या नहीं ?'
तब मैं मुश्किल में पड़ जाता हूँ ।
सोचता हूँ कि क्या कहूँ ?
हाँ भी ठीक नहीं है।
ना भी ठीक नहीं है।
इसलिए हंसता हूँ और चुप रह जाता हूँ।
लेकिन तुमने तो लिख कर पूछा है ।
इसलिए हँसने और चुप रह जाने का भी उपाय नहीं छोड़ा है ।

रजनीश के प्रणाम

३०–१२–१९७०

[प्रति : श्री शिव, जेड–२१७।सी० अपर लाइन्स, जबलपुर (म० प्र०)]

१०१ / उठो अब, और चलो

मेरे प्रिय,

प्रेम । वर्ष बीत गया, तब कहीं तुम पत्र लिखने का साहस जुटा पाये हो ?

स्वप्नों में तुम्हें पुकारा था ।

सुना तो तुमने, लेकिन अब तक समझ नहीं पाये क्या ?

जागने के लिए ही तो पुकारा है ।

नींद तोड़ने के लिए ही तो आवाज दी है ।

उठो अब और चलो––न चलो तो मंजिल बहुत दूर है––चलो तो बहुत निकट।

निकट भी नहीं—क्योंकि निकटता भी तो दूरी (Distance) है ।

वस्तुतः तो **तुम ही मंजिल हो ।**

चलो और स्वयं को पा लो ।

रजनीश के प्रणाम

१–१–१९७१

[प्रति : श्रीयुत् पृथ्वीश जाडेजा, C/o मा योग समाधि, ४४ पंकज प्रह्लाद प्लाट राजकोट (सौराष्ट्र)]

१०२ / समय चूका कि सब चूका

मेरे प्रिय,

प्रेम । बगदाद का एक नाई बड़ी मुश्किल में पड़ा था ।

जो भी व्यक्ति उसके नाई-बाड़े में आता वही उस सुन्दर राजकुमारी की चर्चा करता जो कि किसी जादूगर ने किसी दुर्ग में बन्द कर रखी थी ।

वह यह भी सुनता कि जो भी व्यक्ति उसे छुड़ाने में सफल होगा, वह सुंदरी तो उसे मिलेगी ही, साथ ही उसका पूरा राज्य भी उसे मिलेगा ।

लेकिन उस सुंदरी को कैद से छुड़ाना अति दुरूह था ।

दुर्ग एक घने जंगल में था और जंगल के खतरनाक जानवर १०० में से ९९ मुक्तिदाताओं का भोजन कर लेते थे ।

फिर दुर्ग एक पर्वत पर था और जो व्यक्ति जानवरों से बच जाते उनमें १०० में से ९९ राक्षसों द्वारा सरकाई गयी चट्टानों में दब कर मर जाते थे ।

फिर जो व्यक्ति इन राक्षसों से भी बच जाते वे जब दुर्ग-द्वार में प्रवेश करते तो अचानक आग भड़क उठती और उसमें जल कर राख हो जाते थे ।

कुछ भाग्यशालियों ने जंगल पार किया था ।

उनमें से कुछ ने राक्षसों को भी पार किया था ।

लेकिन अब तक कोई द्वार के भीतर प्रवेश नहीं कर पाया था ।

आखिर नाई को और सहना कठिन हो गया ।

मनुष्य के धैर्य की भी तो सीमा है न ?

उसने अपना सब-कुछ बेच दिया और सुंदरी की खोज में निकल पड़ा ।

लेकिन आश्चर्य कि जंगल के जानवर उसे न मिले !

उसने **भगवान को धन्यवाद** दिया और आगे बढ़ा ।

लेकिन आश्चर्य कि चट्टानों को गिराने वाले राक्षस कहीं भी न थे !

आशा और अभीप्सा से वह तेजी से द्वार की ओर दौड़ने लगा !

और फिर वह द्वार भी पार कर गया !

लेकिन आश्चर्य कि द्वार की आग भी न भड़की !

वह प्रभु के अनुग्रह के प्रति झुक-झुककर आभार प्रकट करने लगा।

उसके सामने ही वह सिंहासन था——सिंहासन पर वह राजकुमारी थी, जिसकी कि उसने बचपन से कहानियाँ सुनी थीं।

वह डरता हुआ आगे बढ़ा——लेकिन दुर्ग किसी की हँसी से गूँजने लगा और आवाज आयी कि अब डरो मत——क्योंकि, अब पाने को ही क्या है ?

वह सिंहासन के सामने पहुँच गया——लेकिन वहाँ कोई सुंदरी युवती नहीं थी।

सिंहासन पर एक बूढ़ी औरत थी और वह भी मृत।

असल में वह यह भूल गया था कि कम-से-कम ६० वर्षों से तो वह स्वयं ही इस कहानी को सुन रहा था।

रजनीश के प्रणाम

२-१-१९७१

[प्रति : स्वामी कृष्ण चैतन्य, संस्कारतीर्थ, आजोल, जि० महेसाणा, (गुजरात)]

१०३ / होश (Awareness) ही ध्यान है

मेरे प्रिय,

प्रेम। आत्मा, परमात्मा या अनात्मा——जैन, हिन्दू या बौद्ध——सभी शब्द अंश-सत्य को प्रकट करते हैं।

और, पूर्ण सत्य अभिव्यक्त नहीं होता है।

क्योंकि शब्द उसके लिए अति छोटे और सकरे हैं।

इसलिए शब्दों में न तो उलझें और जो भी शब्द ठीक लगे——रुचि-अनुकूल हो उसे चुन लें।

और कोई भी शब्द न चुनें तब भी साधना में कोई बाधा नहीं पड़ती है।

वस्तुतः तो बाधा शब्दों के आग्रह से ही पड़ती है।

यहूदियों का जो परमात्मा के लिए शब्द है वह है याहवेह (yahweh) या यहोवा (yahoba) और उसका अर्थ होता है अनाम (No name या Nameless)।

सिद्धान्तों, शास्त्रों और वादों से सत्य की खोज का दूर का भी संबंध नहीं है।

इसलिए शास्त्रों से बचें तो अच्छा है।

अन्यथा साधना से बच जायेंगे।

साधना करें साक्षी-भाव की।

विचार हों या भाव, क्रियाएँ हो या प्रतिक्रियाएँ——सबके प्रति साक्षी (Witness) हों।

जीवन-धारा बेहोश (Unconscious) न रहे।

होश (Awareness) का ही ध्यान करें।

होश ही ध्यान है।

और शेष प्रभु पर छोड़ दें या याहवेह पर——जिसका कि कोई भी नाम नहीं है।

शेष एक प्रश्न का उत्तर नहीं दूँगा——क्योंकि वह साधना के लिए व्यर्थ है। यह नहीं कि वह प्रश्न ठीक नहीं है——न ही यह कि उसका उत्तर नहीं है। वरन् इसीलिए कि वह सत्य के साधक के लिए असंगत (Irrelevant) है।

रजनीश के प्रणाम

२-१-१९७१

[प्रति : श्री शशिवदन बी० देलीवाला, डा. एम० जी० धोलकिया की बिल्डिंग, ६-जगन्नाथ प्लाट, राजकोट (सौराष्ट्र)]

१०४ / स्वयं में खाली जगह बनाओ

मेरे प्रिय,

प्रेम। सत्य को जरूर खोजो।

लेकिन, **सत्य को खोज वही पाता है जो खोजते-खोजते स्वयं खो जाता है।**

'स्व' का पूर्णतया खो जाना ही सत्य का पूर्णतया आ जाना है।

सत्य के आगमन के लिए आंतरिक अवकाश (Inner Space) चाहिए न ?

स्वयं में जगह बनाओ।

स्वयं को स्वयं से भरा रखा तो सत्य आयेगा कहाँ ?

रिक्त बनो।

शून्य बनो।

और फिर **सत्य का सागर उस शून्य को सहज ही भर देता है।**

कबीर ने गाया है : 'हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई।'

इसलिए मैं कहता हूँ : **'जिन्होंने स्वयं को खोया उन्होंने ही सत्य को पाया।**

रजनीश के प्रणाम

२-१-१९७१

[प्रति : श्री जनकराय शंकरलाल व्यास, सरकारी अध्यापन मंदिर, ध्रोल, जि० जामनगर (गुजरात)]

१०५ / पुरानों को दफनाओ और नयों को जन्माते रहो

मेरे प्रिय,

प्रेम। **जीवन है अतर्क्य।**

इसलिए तर्क की पकड़ में मरे हुए के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं आता है।

जीवन है रहस्य।

इसलिए विचार की सब सीमाओं का उल्लंघन करके ही वह रहता है।

फिर जीवन ध्रुवीय (Polar) **भी है।**

जो भी जन्मता है, वह मरता भी है।

और इसीलिए जिसे मरने से बचना है, उसे जन्मना ही असंभव है।

धर्म पैदा होते हैं और मरते भी हैं।

संस्थाएँ जन्मती हैं और सड़ती भी हैं।

लेकिन यही है नियति—समय और क्षेत्र में प्रत्येक वस्तु की यही नियति है।

इसलिए पुरानों को दफनाओ और नयों को जन्माते रहो।

इसके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है।

निश्चय ही जो आज नया है वही कल पुराना हो जायेगा।

तब उसे भी दफना देना है।

बच्चे बूढ़े हो जाते हैं, इसलिए तो उन्हें पैदा होने से रोकना उचित नहीं है।

और न ही बूढ़ों को दफनाये जाने से बचाना ही उचित है, क्योंकि वे कभी बच्चे थे !

रजनीश के प्रणाम

२-१-१९७१

[प्रति : श्री लहर सिंह भाटी, भारत वस्तु भंडार, दालुमोदी बाजार, रतलाम (म० प्र०)]

प्यारी कमल,

प्रेम। जिसकी खोज है, वह जरूर ही मिलता है।
सरिता सागर को खोज लेती है।
प्यास सरोवर को खोज लेती है।
प्रार्थना प्रभु को खोज लेती है।
प्रभु तो निकट ही है, बस हम ही प्यासे नहीं हैं।
प्यास को जगा।
बस प्यास हो जा।
और फिर उसके मिलने में क्षण भर की भी देर नहीं होती है।

रजनीश के प्रणाम
२-१-१९७१

[प्रति : श्रीमती कमला लखमीचंद, ७५ सरपेन्टाइन रोड,
फ्लैट नं० १ के० पी० वेस्ट, बंगलोर-२०]

मेरे प्रिय,

प्रेम। अंधकार दिखता है न ?
उसे ही उसकी समग्रता में देखो।
उससे भागना भर नहीं।
उसमें ही जियो और उसमें ही जागो।
भागे कि थके।
अंधकार से पलायन आलोक में नहीं, बस और गहन अंधकार में ही ले जाता है।
क्योंकि, प्रश्न अंधकार का है ही नहीं।
प्रश्न है स्वयं के सोये होने का।
इसलिए, जागे कि अंधकार मिटा।
जागना ही आलोक है।
जागो—अंधकार को ही विषय (Object) बना लो और जागो।
अंधकार पर ही ध्यान (Meditation) करो और जागो।

रजनीश के प्रणाम
२-१-१९७१

[प्रति : स्वामी चैतन्य भारती, कमरा नं० ९, INSDOC, दिल्ली-१२]

१०८ / विस्मरण का विष

प्रिय सावित्री,

प्रेम । साहस न किया तो **वापिस** आना ही पड़ेगा ।

उसमें **किंचित्** भी संदेह नहीं है ।

आह ! पूर्व में भी तो ऐसा ही हुआ है ।

लेकिन **तू** भुलाये बैठी है ।

विस्मरण कैसा सुखद विष है ।

रजनीश के प्रणाम

२-१-१९७१

[प्रति : डा० सावित्री सी० पटेल, मोहनलाल डी० प्रसूतिगृह, पो० किल्ला पारडी, जिला-बलसाड़ (गुजरात)]

१०९ / स्वयं का रूपान्तरण—समाज को बदलने का एक मात्र उपाय

मेरे प्रिय,

प्रेम । समाज सीधा नहीं बदला जा सकता है ।

क्योंकि, समाज तो निष्प्राण ढाँचा है ।

या, व्यक्तियों के अन्तर्सबंधों का आंककीय (Statistical) जोड़ है ।

बदले तो केवल व्यक्ति (Individual) **ही जा सकते हैं।**

क्योंकि, व्यक्तियों के पास ही वह चेतना (Consciousness) है जो कि स्वयं का रूपांतरण कर सकती है ।

और जो रूपांतरण स्वयं से नहीं है, वह रूपांतरण ही नहीं है ।

ऊपर से थोपे गये रूपांतरण न टिकते हैं, न टिक ही सकते हैं।

उस तरह की अवैज्ञानिक चेष्टा मनुष्य बहुत कर चुका है और परिणाम में सदा ही विफलता मिली है ।

व्यक्ति है मौलिक इकाई ।

समस्त श्रम उस पर हीं केंद्रित करना है ।

और, इसमें एक सुविधा है कि **प्रत्येक स्वयं से** ही प्रारंभ कर सकता है ।

जहाँ भी **दूसरे से** प्रारंभ है वहीं हिंसा है ।

फिर वह प्रारंभ चाहे कितना ही अहिंसक क्यों न दिखाई पड़ता हो ।

इसलिए मैं सदा कहता हूँ : **समाज को छोड़ो और स्वयं को पकड़ो।**

क्योंकि, समाज को बदलने का इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है ।

रजनीश के प्रणाम

२-१-१९७१

[प्रति : श्रीयुत् ओ० पी० बिल्ला, द्वारा श्री गुरुदास राम जी, लाहोरी गेट, कपूरथला (पंजाब)]

मेरे प्रिय,

प्रेम । अनुभव गहरायेंगे ।
बस श्रम करें ।
लगन पूर्वक ।
संकल्प पूर्वक ।
प्रभु की ओर उठाया गया गलत कदम भी व्यर्थ नहीं जाता है !
इसलिए, सही कदम का तो प्रश्न ही नहीं है ।
चलें और देखें ।
धर्म तो प्रयोग है ।
मात्र आस्था नहीं ।
धर्म तो अनुभव है ।
मात्र विश्वास नहीं ।

रजनीश के प्रणाम

२-१-१९७१

[प्रति : श्री शोरीलाल भंजाना, ११, डाक्टर चाल,
जोशी बाग, कल्याण, जि० थाना]

मेरे प्रिय,

प्रेम । सागर जैसे सरिता को बुलाता है--ऐसे ही मैंने तुम्हें भी पुकारा है।
यही पुकार तुम्हारे प्राणों में गूँजी है ।
और गूँज सकी, क्योंकि वहाँ सदा-सदा से उसकी ही प्रतीक्षा थी--प्यास थी ।
अब देर न करो ।
ऐसे भी तो बहुत देर हो चुकी है !
ध्यान में उतरो ।
क्योंकि वहीं और केवल वहीं मुझसे मिलन हो सकता है ।
और मुझसे ही नहीं--सबसे भी ।
और सबसे ही नहीं--स्वयं से भी ।

रजनीश के प्रणाम

२-१-१९७१

[प्रति : वीनस स्टुडियो, डलहौजी]

११२ / प्रेम में, प्रार्थना में, प्रभु में डूबना ही मुक्ति है

प्यारी भानु,

प्रेम । प्रेम में डूबना ही पड़ता है ।

क्योंकि, **जो डूबते हैं वहाँ, वे ही उबरते हैं।**

प्रेम में, प्रार्थना में, प्रभु में डूबना ही किनारा है ।

ऐसा समझ कि **बचे कि डूबे और डूबे कि बचे।**

वैसे तब तक समझ में भी कैसे आयेगा जब तक कि डूबेगी ही नहीं !

रजनीश के प्रणाम

२-१-१९७१

[प्रति : सुश्री भानुमति पी० कटारिया, ए० ८/३११,
नेहरू नगर, कुर्ला (ईस्ट), बम्बई-७० ए० एस०]

११३ / प्राणों का पंछी—अज्ञात की यात्रा पर

प्यारी रमा,

प्रेम । तेरा दूसरा पत्र ।

प्रेम में—**प्रार्थना में** पगली ऐसा ही होता है ।

प्राणों का पक्षी अज्ञात की यात्रा पर निकल जाता है।

और वही यात्रा तो करने योग्य है ।

शेष सब भटकाव है ।

लेकिन भटकाव में सुरक्षा (Security) है ।

क्योंकि, वह जाने-माने रास्तों पर जो है ।

अज्ञात में है जोखिम ।

अज्ञात में है असुरक्षा ।

आह ! लेकिन **अज्ञात** (Unknown) **में ही है जीवन** ।

कब्र तो सदा ही खतरों के बाहर है !

इसीलिए तो हम सब जीने के पहले ही मर जाते हैं ।

रजनीश के प्रणाम

२-१-१९७१

[प्रति : सुश्री रमा पटेल, न्यू अमृत कुंज प्लाट, पंचवटी, अहमदाबाद-६]

मेरे प्रिय,

प्रेम। कल की न सोचें।

भविष्य को ही फिक्र करने दें भविष्य की।

ध्यानी के लिए तो आज काफी है--अभी (Now) ही बहुत है।

क्षण में ही जियें।

क्षण के पार सिर्फ पागलपन है।

क्योंकि वस्तुतः क्षण (Moment) ही अनंतता (Eternity) है।

और एक-दूसरे को प्रेम दें।

मित्रता दें।

जीवन का प्रसाद दें।

पति-पत्नी का यही अर्थ है।

प्रेम बढ़े तो काम अपने से ही तिरोहित होता है।

एक-दूसरे में प्रभु को देखें तो फिर शरीर दिखाई नहीं पड़ते हैं।

एक-दूसरे में गहरा देखें तो फिर मर्त्य नहीं दिखाई पड़ता है।

संभोग के साथी यदि समाधि के साथी न बन पायें तो जानें कि अवसर व्यर्थ ही गया है।

रजनीश के प्रणाम

३-१-१९७१

[प्रति : डा० एस० बी० शाह, द्वारा रगबी होटल, माथेरान (महाराष्ट्र)]

प्रिय सावित्री,

प्रेम। **मृत्यु** का ध्यान कर।

मृत्यु पर ध्यान कर।

मृत्यु से बचने में भय है।

मृत्यु से पलायन में भय है।

मृत्यु के साक्षात्कार में अभय है।

और ध्यान में ही मृत्यु का साक्षात्कार हो सकता है।

और जो अमृत को जान लेता है, उसके लिए **अमृत** के द्वार खुल जाते हैं।

रजनीश के प्रणाम

३-१-१९७१

[प्रति : डा० सावित्री पटेल, पो० किल्ला पारडी, जि० बलसाड़ (गुजरात)]

११६ / भय को पकड़ कर मत रख

प्रिय सावित्री,

प्रेम । भय थोड़े ही तुझे पकड़े है ।

तूने ही भय को पकड़ा हुआ है ।

इसलिए **छोड़ेगी** तो ही छूटेगा ।

और तू असंभव चाहती है : तू चाहती है कि छोड़े बिना भय छूट जाये !

यह न कभी हुआ--न कभी हो सकता है ।

छोड़ और देख ।

और तू फिर हँसेगी ।

रजनीश के प्रणाम

४-१-१९७१

[प्रति : डा० सावित्री पटेल, पो० किल्ला पारडी, जि० बलसाड़ (गुजरात)]

११७ / साधना-संयोग अति दुर्लभ घटना है, चूकना मत

प्रिय सावित्री,

प्रेम । साधना-संयोग अति दुर्लभ घटना है ।

कभी यात्री होता है तो नाव नहीं होती ।

कभी नाव और यात्री भी होता है, तो नदी नहीं होती ।

कभी यात्री, नाव, नदी सभी होते हैं, पर माझी नहीं होता ।

और कभी यात्री, नाव, नदी और माझी भी होता है और फिर भी यात्रा नहीं होती ।

तू आखिरी स्थिति में ही है ।

और देर न कर, क्योंकि संयोग के बिखर जाने में देर नहीं लगती है ।

रजनीश के प्रणाम

४-१-१९७१

[प्रति : सावित्री पटेल, पो० किल्ला पारडी, जि० बलसाड़ (गुजरात)]

प्यारी प्रेम,

प्रेम । सीख--हर अनुभव से कुछ सीख ।

कड़ुवे-मीठे--सभी अनुभव जीवन को समृद्ध करते हैं ।

और अंततः अनुभव नहीं बचते, बस ज्ञान ही बचता है ।

इसलिए, जो अंततः बचेगा हाथ में, **उसी पर** ध्यान रख ।

अनुभव के फूल तो खो जाते हैं; इसलिए जो उनसे समय रहते ज्ञान का इत्र नहीं निचोड़ लेता है, वह खाली हाथ ही रह जाता है ।

रजनीश के प्रणाम

४-१-१९७१

[प्रति : मा योग प्रेम, विश्वनीड़, संस्कारतीर्थ, आजोल, जिला महेसाणा (गुज०)]

मेरे प्रिय,

प्रेम । संसार की चिन्ता न करो ।

क्योंकि, **स्वयं** की चिन्ताएँ ही क्या कम हैं ?

और दूसरों के संबंध में मत सोचो ।

क्योंकि, अभी **स्वयं** के संबंध में ही सोचना कहाँ पूरा हुआ है ?

धर्म का क्या होगा--यह सवाल असली नहीं है ।

स्वयं का क्या हो रहा है, यही सवाल असली है ।

और ऐसी बातें मत पूछो, जिनसे तुम्हारी साधना का सीधा संबंध नहीं है ।

क्योंकि, ऐसी बातों का कोई अंत ही नहीं है, जब कि **तुम्हारा** अंत है ।

और इसके पूर्व कि **तुम्हारा** अंत हो उसे जान लेना जरूरी है **जिसका कि कोई अंत नहीं है ।**

रजनीश के प्रणाम

४-१-१९७१

[प्रति : श्री स्वतन्त्र कुमार, कमरा नं० १८६, मेहरचंद होस्टल, डी० ए० बी० कालेज, जालन्धर शहर (पंजाब)]

१२० / परमात्मा की आग में जल जाना ही निर्वाण है

मेरे प्रिय,

प्रेम । निश्चय ही सब तैयार था ।

बस चिनगारी की जरूरत थी ।

और अब आग पकड़ गयी है ।

वह आग अब बुझेगी नहीं ।

यह बुझने वाली आग नहीं है ।

क्योंकि, यह पदार्थ की नहीं, परमात्मा की आग है ।

जलो ऐसे कि फिर कुछ भी न बचे ।

राख भी खोजे से न मिले ।

क्योंकि, ऐसे जल जाना ही निर्वाण है ।

रजनीश के प्रणाम

४-१-१९७१

[प्रति : श्री बलवंत राय बी० भट्ट, ब्रामीन सोसायटी, सुरेन्द्रनगर (गुजरात)]

१२१ / बुद्धि का भिक्षा-पात्र और जीवन का सागर

मेरे प्रिय,

प्रेम । जीवन में सब-कुछ समझ में नहीं आता है ।

क्योंकि, **समझ बहुत छोटी और जीवन विराट्** है ।

और यदि बुद्धि के भिक्षा-पात्र में सागर न समाये तो कुसूर सागर का तो नहीं है न ?

समझ पर मत रुकना ।

समझ आवश्यक है, पर पर्याप्त नहीं है ।

बुद्धि के पास जरूर एक छोटा-सा द्वीप है प्रकाशित, लेकिन वह भी अर्ध-प्रकाशित सागर में है, और वह सागर पूर्ण-अप्रकाशित महासागर में है ।

ज्ञात अज्ञात के समक्ष कुछ भी नहीं है ।

और **अज्ञात** (Unknown) भी **अज्ञेय** (Unknowable) के समक्ष कुछ भी नहीं है ।

इस सबके जोड़ को ही मैं परमात्मा कहता हूँ ।

रजनीश के प्रणाम

४-१-१९७१

[प्रति : श्री मणिकान्त व्ही० कोठारी, वाडवा चोरू, के० के० स्ट्रीट, भावनगर (गुजरात)]

मेरे प्रिय,

प्रेम । विवाद बुद्धि में है ।
बुद्धि की सीमा में विवाद का अंत नहीं है ।
जहाँ तक विचार है, वहाँ तक विवाद है ।
क्योंकि, विचार द्वैत है ।
इसलिए, न वेद से विवाद का अंत होगा, न बाइबिल से, न कुरान से ।
शब्द से, शास्त्र से, सिद्धान्त से--किसी से भी विवाद का अंत नहीं है ।
विचारातीत ध्यान में ही अद्वैत का साक्षात्कार होता है ।
और वही **संवाद** है ।
उसके पूर्व नहीं ।
इसलिए, ध्यान खोजें ।
मौन खोजें ।
समाधि खोजें ।

रजनीश के प्रणाम

४-१-१९७१

[प्रति : श्री अर्जुनलाल नरेला, १४१७, नया बाजार, नीमच कैंट (म० प्र०)]

मेरे प्रिय,

प्रेम । जहाँ प्यास है, वहाँ मार्ग है ।
संकल्प से तो स्वप्न भी सत्य हो जाते हैं न ?
स्वप्न में और सत्य में संकल्प के अतिरिक्त और कोई दूरी कहाँ है ?

रजनीश के प्रणाम

४-१-१९७१

[प्रति : श्री रमेश सोलंकी, सोलंकी ब्रदर्स, लक्ष्मण-मंदिर के सामने, भरतपुर (राज०)]

प्रिय विमल,

प्रेम। धर्म निश्चय ही सनातन है––अनादि-अनंत है।

लेकिन, धर्म-ग्रंथ नहीं।

धर्म-ग्रंथ सदा ही समय (Time) में हैं।

अर्थात्, सामयिक हैं।

सत्य समयातीत है। शब्द नहीं।

और इसीलिए धर्म को कहा जाता है, फिर भी कहा नहीं जा पाता है।

विट्गेंस्टीन ने संवाद के दो प्रकार कहे हैं: 'कहना' (Saying) और 'बताना' (Showing)।

धर्म-संवाद दूसरे ही प्रकार का है।

धर्म को कहा नहीं जा सकता है, सिर्फ इशारा ही किया जा सकता है। (It can not be said; but only showed.)

और बेचारे ग्रंथ तो सिर्फ कह ही सकते हैं।

बताना शब्द की सामर्थ्य में नहीं है।

हाँ––**व्यक्ति** बता सकते हैं।

इसलिए वस्तुतः **धार्मिक व्यक्ति तो होते हैं, धर्म-ग्रंथ नहीं।**

क्योंकि, **व्यक्ति समय में और समय के बाहर––दोनों एक ही साथ हो सकता है।**

लेकिन, शब्द की या शास्त्र की वह सामर्थ्य नहीं है।

पर शब्द या शास्त्र व्यर्थ नहीं हैं।

उनसे ही शब्द की व्यर्थता का बोध होता है इसलिए!

उनसे ही मुक्त होकर निःशब्द की यात्रा शुरू होती है इसलिए।

रजनीश के प्रणाम

७-१-१९७१

[प्रति: सुश्री विमल मेहता, द्वारा–श्री के० के० मेहता, डी–१९३, डिफेंस कालोनी, नई दिल्ली–१]

मेरे प्रिय,

प्रेम। स्वयं को प्रभु के हाथों में छोड़े बिना और कोई उपाय नहीं है।

जीवन की चरम-समस्याओं के प्रति मनुष्य असहाय (Helpless) है।

इस असहायावस्था (Helplessness) को ठीक से समझें।

और, स्वीकारें।

यही समर्पण है।

और समर्पण समाधान है।

जब तक लड़ेंगे,

तब तक हारेंगे।

इसलिए हार जावें।

अपनी ओर से ही हार जावें।

मौत के द्वारा हराये जाने की प्रतीक्षा न करें।

स्वयं से ही हार जाना जीत का द्वार है।

रजनीश के प्रणाम

७-१-१९७१

[प्रति: श्री लालचंद जी० के०, द्वारा–मेसर्स श्याम सुन्दर मेटल इंडस्ट्रीज, ५/२ फानसवाडी, थानावाला बिल्डिंग, फर्स्ट फ्लोर, बम्बई–२]

प्यारी सुशीला,

प्रेम । चोट करनी ही हो तो गहरी ही करनी चाहिए न ?
छोटी-मोटी चोटों से तो नहीं चल सकता है ।
आदमी की नींद गहरी है ।
शायद, नींद कम है और **बेहोशी** ही ज्यादा है ।
और फिर वह **चोटों के भी** अन्यथा अर्थ निकालने में भी कुशल है !
ऐसे अर्थ जो कि नींद को तोड़ते नहीं, वरन् और गहरा जाते हैं !
विष को औषधि की भाँति उपयोग किया जा सकता है ।
तो औषधि को भी विष की भाँति उपयोग किया जा सकता है न ?

रजनीश के प्रणाम
७–१–१९७१

[प्रति : श्रीमती सुशीला सिन्हा, द्वारा–एडवोकेट बी० एस० सिन्हा, ब्रजकिशोर पथ, पटना–१]

मेरे प्रिय,

प्रेम । ध्यान के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है ।
या, **जो भी मार्ग हैं, वे सब ध्यान** (Meditation) के ही रूप हैं ।
प्रार्थना भी ध्यान है ।
पूजा भी ।
उपासना भी ।
योग भी ध्यान है ।
सांख्य भी ।
ज्ञान भी ध्यान है ।
भक्ति भी ।
कर्म भी ध्यान है ।
संन्यास भी ।
ध्यान का अर्थ है **चित्त की मौन, निर्विचार, शुद्धावस्था** ।
कैसे पाते हो इस अवस्था को यह महत्त्वपूर्ण नहीं है ।
बस पा लो, यही महत्त्वपूर्ण है ।
किस चिकित्सा-पद्धति से स्वस्थ होते हो यह गौण है ।
बस स्वस्थ हो जाओ यही महत्त्वपूर्ण है ।

रजनीश के प्रणाम
७–१–१९७१

[प्रति : श्री राधाकान्त नागर, १७४०, रामगली, सब्जी मंडी, सोहन गंज, दिल्ली–७]

मेरे प्रिय,

प्रेम। यात्रा है लम्बी।
क्योंकि, मंजिल निकट है।
दूर जो है, वह दिखाई पड़ता है।
और, निकट जो है वह आँख से ओझल हो जाता है।
दूर जो है, उसका आमंत्रण भी मिलता है।
वह बुलाता हुआ मालूम पड़ता है।
और वह **अहंकार के लिए चुनौती** भी बन जाता है।
और **निकट जो है, वह बस भूल ही** जाता है।
ऐसे ही आत्मा विस्मृत है।
ऐसे ही परमात्मा भूला है।
इसलिए जो निकटतम है, उसकी ही यात्रा दूरतम हो गयी है।
इसे समझो––और फिर चलना ही नहीं पड़ता है।
इसे पहचानो––और फिर पाओगे कि जहाँ खड़े हो, वहीं तो मंजिल है।

रजनीश के प्रणाम

७–१–१९७१

[प्रति : श्री सरदारीलाल सहगल, न्यू मिसरी बाजार, अमृतसर (पंजाब)]

प्यारी गुणा,

प्रेम। हाँ! मैं जरूर ही वापिस लौटा हूँ।
शिखर से तुम्हें पुकारा।
लेकिन, शायद मेरी आवाज तुम तक नहीं पहुँची।
या, पहुँची भी तो तुम्हारी समझ में नहीं आयी।
फिर तो एक ही रास्ता था कि मैं **तुम्हारी घाटियों में वापिस जाऊँ।**
और **तुम्हारी ही भाषा** बोलूँ।
लेकिन, क्या तुम इसे भी न समझ पाओगी?
या कि समझोगी भी तो गलत समझोगी?
कृष्ण के साथ भी तुमने यही किया।
बुद्ध के साथ भी यही किया।
और, मैं जानता हूँ कि मेरे साथ भी अन्यथा नहीं होगा।
लेकिन, जब तुम नहीं थकती हो तो हम भी क्यों थकें?
हम भी, पुकारते ही रहेंगे।
और मेरे शिखर पर तुम न आओ तो न आओ।
लेकिन मैं तो तुम्हारी घाटियों में आ ही सकता हूँ।
इसी आशा में कि प्रकाशोज्वल शिखरों की तुम्हें खबर दूँ।
और घाटियों के अंधेरेपन से पैदा हुआ तुम्हारा अंधापन तोड़ूँ।
और मैं यह भी भली-भाँति जानता हूँ कि तुम मुझसे **लड़ोगी।**
क्योंकि बीमारियाँ भी बहुत दिन साथ रहें तो प्रीतिकर हो जाती हैं।
और फिर जो प्रकाश तुम्हारा परिचित नहीं है, तुम उस पर भरोसा भी कैसे करो?
और मैं भी तो अपरिचित हूँ, मेरा भी भरोसा तुम्हें क्यों कर हो?

रजनीश के प्रणाम

७–१–१९७१

[प्रति : श्रीमती गुणा शाह, द्वारा–श्री ईश्वर भाई शाह, बम्बई]

मेरे प्रिय,

प्रेम । मैं आपकी गति से अत्यन्त प्रसन्न हूँ ।

काम-ऊर्जा (Sex-Energy) उर्ध्वगामी होने के लिए मुक्त हो गयी है ।

वही समस्या थी और उसका समाधान हो गया है ।

अब ध्यान का आयाम (Dimension) ही और हो जायेगा ।

अभी तक ध्यान भी एक संघर्ष था ।

लेकिन, अब ध्यान **समर्पण** (Surrender) बनेगा ।

अब तैरना नहीं है ।

अब बहना है ।

बहें--आनंद से, शांति से, विश्राम से ।

कहीं पहुँचना नहीं है जैसे--वरन्, जैसे जहाँ भी पहुँचें **वहीं और वही मंजिल है ।**

अब डूबें भी तो वही किनारा है ।

रजनीश के प्रणाम

७-१-१९७१

[प्रति : लाला सुन्दरलाल जैन, मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-७]

प्रिय अरुण,

प्रेम । प्रभु पर छोड़ा है तो पूरा ही छोड़ दो ।

सुख-दुःख सभी उसे दे दो ।

और निर्भार हो जाओ ।

और समझ को भी अपने पास मत बचाओ ।

उसे भी उसी के चरणों में चढ़ा दो ।

और **ना-समझ** हो जाओ !

क्योंकि, अंततः समझ ही सबसे बड़ा भार है !

और अंततः समझ ही समझ के आने में सबसे बड़ा अवरोध भी है ।

समझदार होकर बहुत देखा !

बहुत जन्मों देखा ।

और पाया क्या ?

अब ना-समझ होकर भी देखो ।

समझ के लिए जीवन-रहस्य के जो द्वार बंद हैं, वे ही द्वार ना-समझ के लिए सदा-सदैव खुले हैं ।

तर्क के लिए जहाँ दीवार है,

प्रेम के लिए वहीं द्वार है ।

बुद्धि के लिए जहाँ पराजय है,

हृदय के लिए वहीं विजय है ।

रजनीश के प्रणाम

७-१-१९७१

[प्रति : श्री अरुण जे० पटेल, प्रागजी वृन्द्रावन बिल्डिंग, जामली गली, बोरीवली, बंबई-९२]

मेरे प्रिय,

प्रेम। धर्म (Religion) की जरूरत है, धर्मों (Religions) की नहीं। क्योंकि, धर्म तो धार्मिक है; लेकिन धर्मों की सत्ता राजनैतिक हो जाती है।

धर्म है प्रेम की भाँति।

वैयक्तिक।

निजी।

संगठन नहीं, साधना।

उसे पाना है तो स्वयं में साधो।

और, खोना है तो दूसरों पर ध्यान दो।

उसे पाना है तो स्वयं में खोदो।

ध्यान से।

प्रार्थना से।

उपासना से।

निकट है स्रोत उसका।

अति-निकट।

लेकिन, जिनका चित्त ही स्वयं के निकट नहीं आता है, वे उसके निकट कैसे आ सकते हैं?

रजनीश के प्रणाम

७-१-१९७१

[प्रति : जसवंत राय, द्वारा-श्री तुलसीरामजी ड्राइवर, रामनगर, मकबूल रोड, अमृतसर (पंजाब)]

मेरे प्रिय,

प्रेम। **संबंध तो है ही।**

आज का नहीं।

बहुत पुराना!

जन्मों-जन्मों का।

इसीलिए, तो पुकार तुम सुन सके।

इसीलिए, तो भाषा तुम समझ सके।

इसीलिए, तो **भरोसा** तुम कर सके।

और सब धीरे-धीरे याद भी आ जायेगा।

आना शुरू भी हो गया है।

स्मृति मरती नहीं, बस विस्मृत ही होती हैं।

जन्म-जन्म की स्मृति-परतें अचेतन में विश्राम करती हैं।

वे उठेंगी और तुम्हें घेरेंगी।

उनसे घबड़ाना नहीं।

उनसे चिंतित न होना।

उनका पुनर्जागरण हितकर है, मंगलदायी है।

रजनीश के प्रणाम

७-१-१९७१

[प्रति : श्री ऐरन, ६ गणेश सोसायटी, शाहपुर दरवाजा बाहर, अहमदाबाद-१]

प्रिय धर्मकीर्ति,

प्रेम । पागल हुए बिना प्रभु-मिलन कहाँ ?

पागल होना ही उसे पाने की शर्त है ।

और स्वयं को धन्यभागी समझ कि उसने तुझे पुकारा है ।

वह पागल करेगा——वह मिटा ही डालेगा ।

सरिता को जैसे सागर बुलाता है ।

ऐसा ही उसका भी बुलावा है ।

सरिता जैसी नाचती-गाती चलती है अपने प्रिय-मिलन को; ऐसे ही चलना है तुझे भी ।

सरिता जैसी अभय हो दौड़ती है अज्ञात-अपरिचित में, ऐसे ही दौड़ना है तुझे भी ।

और अंततः सरिता जैसे तटों का मोह छोड़ खो जाती है सागर में; ऐसे ही लीन हो जाना है तुझे भी।

रजनीश के प्रणाम

७–१–१९७१

[प्रति : मा धर्मकीर्ति, आजोल]

प्रिय योग शांति,

प्रेम । तेरे हृदय में दबायी हुई वेदना है ।

दबाये हुए आँसू हैं ।

ध्यान में वेदना फूटेगी—आँसू बहेंगे ।

और ऐसे ही उस भार से मुक्ति होगी, जो कि तेरे प्राणों पर पत्थर जैसा जम गया है ।

इसलिए, रोने में कंजूसी मत करना ।

संकोच मत करना ।

सोच-विचार मत करना ।

रो——हृदय भर कर रो ।

समग्र अस्तित्व से रो ।

वेदना को पिघलने दे और बहने दे ।

आँसुओं में स्नान करके तो तू स्वस्थ होगी ।

क्योंकि, उन्हें रोक कर ही तू अस्वस्थ है ।

रजनीश के प्रणाम

७–१–१९७१

[प्रति : मा योग शान्ति, संस्कार-तीर्थ, आजोल (गुजरात)]

१३६ / दुर्लभ पंछी उस-पार (Beyond) का

प्यारी गुणा,

प्रेम । गंगा पास हो तो गंगा नहीं रह जाती है ।
दूरी दृष्टि देती है ।
और निकट के प्रति आँखें बंद हो जाती हैं ।
इसीलिए तो परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता है ।
इसलिए नहीं कि वह दूर है ।
इसलिए भी नहीं कि वह अदृश्य है ।
वरन्, इसलिए ही, क्योंकि वह **निकटतम से भी निकटतम है ।**
और मनुष्य अपने अंधेपन को उसका अदृश्य होना मान कर संतुष्ट रहता है !
जल्दी ही मैं भी दूर जाऊँगा । जाना ही पड़ेगा ।
क्योंकि, मेरा भी **माँगा हुआ** समय है ।
और तब तू मुझे ठीक से देख पायेगी ।
क्योंकि, दूरी परिप्रेक्ष्य (Perspective) देती है ।
जल्दी ही मुझे **उस पार** ले जाने वाली नौका तट से आ लगेगी ।
और **जिसने** मुझे भेजा है, उसका बुलावा आ पहुँचेगा ।
तब तू मुझे ठीक से पहचान पायेगी ।
और विदा के क्षणों में फिर शंकाएँ भी मन को नहीं घेरती हैं ।
और जो अदृश्य में खो जाता है, उसके प्रति श्रद्धा आ जाती है ।
शंकाएँ मन के बचाव हैं ।
अश्रद्धाएँ सुरक्षाएँ हैं ।
शायद जो मुझसे तू निकट होकर नहीं ले पायेगी, वह दूर होकर ले सकेगी ।
लेकिन, मैं चाहता हूँ कि निकट हूँ तभी ले ले ।
अन्यथा तेरे मन को बहुत पछतावे होंगे और बहुत आँसुओं में व्यर्थ ही तुझे डूबना होगा ।

रजनीश के प्रणाम
८-१-१९७१

[प्रति : श्रीमती गुणा शाह, द्वारा–श्री ईश्वरलाल शाह, बम्बई]

१३७ / कुछ करो, कुछ चलो–स्वयं की खोज में

प्रिय मधुरी बहन,

प्रेम । नहीं—मैं जल्दी नहीं जाऊँगा ।
जिस काम से आया हूँ अर्थात् भेजा गया हूँ, उसे तो पूरा करके ही जाऊँगा ।
लेकिन, मैं जल्दी नहीं जाऊँगा–इसका **यह अर्थ नहीं है कि तुम्हें जल्दी करने की कोई जरूरत नहीं है ।**
तुमने देरी की तो मेरी देरी से देरी भी जल्दी ही सिद्ध होगी ।
और तुमने जल्दी की तो मेरी जल्दी से भी देरी ही है ।
सोचो !
नहीं, सोचने से क्या होगा ?
कुछ करो—स्वयं की खोज में ।
कुछ चलो—स्वयं की दिशा में ।

रजनीश के प्रणाम
८-१-१९७१

[प्रति : सुश्री मधुरी बहन, द्वारा–श्री पुष्कर गोकाणी, एम० एस०, मेसर्स हरीदास कम्पनी, द्वारका (गुजरात)]

मेरे प्रिय,

प्रेम । सत्योपलब्धि के मार्ग अनंत हैं ।

और, व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करता है कि उसके लिए क्या उपयुक्त है ।

और इसलिए जो एक के लिए सही है, वही दूसरे के लिए बिलकुल ही गलत हो सकता है !

इसीलिए **दूसरे के साथ** धैर्य की आवश्यकता है ।

और स्वयं को सबके लिए मापदंड मानना खतरनाक है ।

मैं अनेकांत या स्याद्वाद में इसी सत्य की अभिव्यक्ति देखता हूँ !

विचार-प्रधान व्यक्ति के लिए जो मार्ग है, वह भाव-प्रधान व्यक्ति के लिए नहीं है ।

और बहिर्मुखी (Extrovert) के लिए जो द्वार है, वह अंतर्मुखी (Introvert) के लिए दीवार है ।

ज्ञान का यात्री अंततः ध्यान को नाव बनाता है ।

प्रेम का यात्री प्रार्थना को ।

ध्यान और प्रार्थना पहुँचते हैं एक ही मंजिल पर ।

लेकिन उनके यात्रा-पथ **नितांत भिन्न** हैं !

और उचित यही है कि अपना यात्रा-पथ चुनें और दूसरे की चिन्ता न करें ।

क्योंकि, स्वयं को ही समझना जब इतना कठिन है, तो दूसरे को समझना तो करीब-करीब असंभव ही है ।

रजनीश के प्रणाम

८-१-१९७१

[प्रति : डा० श्री वी० जी० शाह, हीराबाग धर्मशाला, बम्बई-४]

प्रिय योग शांति,

प्रेम । अकेलापन जीवन का तथ्य है ।

उससे जागा जा सकता है, **लेकिन बचा नहीं ।**

वह छाया की भाँति सदा ही साथ है ।

और छाया तो कम-से-कम अँधेरे में साथ छोड़ देती है; वह तो अँधेरे में और भी प्रगाढ़ होकर प्रकट होता है ।

शायद, अँधेरे में आदमी अँधेरे से कम और अपने अकेलेपन से ही ज्यादा डरता है ।

इसलिए, तू अकेलेपन से न भाग, न बच ।

वरन् उसे जी ।

वह है और उसे आलिंगन कर ।

जो है, उसे इनकार करने में सिवाय दुःख के और कुछ भी हाथ नहीं लगता है ।

और जो है उसकी स्वीकृति ही आनंद है ।

और वही आस्तिकता भी है ।

रजनीश के प्रणाम

८-१-१९७१

[प्रति : मा योग शांति, विश्वनीड़, संस्कार तीर्थ, आजोल (गुजरात)]

प्यारी योग प्रिया,

प्रेम। साँझ घिरी। सूर्य डूबा। गुरु ने शिष्य से कहा : "शास्त्र को अंदर जाकर आले में रख आओ।"

शिष्य गया भी।

पर तत्काल ही भयभीत वापिस लौटा और बोला : "गुरुदेव ! आले में सर्प बैठा है !"

गुरु ने कहा : "यह रहा सर्प भगाने का मंत्र--जा और पढ़; सर्प चला जायेगा।"

शिष्य गया।

उसने मंत्र भी पढ़ा।

पर और भी भयभीत वापिस लौटा और बोला : "गुरुदेव ! सर्प मंत्र से शक्तिशाली है। मंत्र पढ़ा, लेकिन वह अपनी जगह ही बैठा है ?"

गुरु ने कहा : "तूने श्रद्धा से नहीं पढ़ा होगा ?"

शिष्य फिर गया।

फिर उसने मंत्र पढ़ा।

लेकिन, और भी भयभीत भागा हुआ वापिस लौटा और बोला "गुरुदेव ! श्रद्धा से भी मंत्र पढ़ा, लेकिन सर्प टस से मस नहीं हो रहा है !"

गुरु ने कहा : "फिर मंत्र को छोड़ और दिया ले जा।"

शिष्य हँसता हुआ वापस लौटा--**उसके हाथ में एक रस्सी थी।**

काम-वासना से लड़ना नहीं।

किसी भी वासना से मत लड़ना।

लड़ने का मंत्र काम नहीं आयेगा।

दिया--ध्यान का दिया ही भीतर ले जाना--उसके अतिरिक्त और कुछ भी काम नहीं पड़ता है।

वासना अर्थात् अँधेरे में देखी गयी जीवन-ऊर्जा।

वासना अर्थात् अँधेरे में, अज्ञान में देखी गयी आत्मा।

ध्यान के प्रकाश में वासना का सर्प पाया ही नहीं जाता है।

ध्यान के प्रकाश में वही मिलता है **जो है।**

और अज्ञान के अंधकार में--या ध्यानाभाव के अंधेपन में वह दिखाई पड़ता है, जो कि वस्तुतः नहीं है।

ध्यान का दिया जला और भीतर जा।

और मैं प्रतीक्षा करूँगा उस क्षण की जब तू हँसती हुई बाहर आयेगी और कहेगी : "सर्प तो है ही नहीं।"

रजनीश के प्रणाम

१-१-१९७१

[प्रति : मा योग प्रिया, विश्वनीड़, संस्कारतीर्थ, आजोल (गुजरात)]

१४१ / कोयले-जैसी चेतना को हीरा-जैसा बनाने की कीमिया है--संन्यास

प्रिय योग प्रेम,

प्रेम । नासमझी से वरदान भी अभिशाप हो जाते हैं ।

और समझ से अभिशाप भी वरदान ।

इसलिए, असली सवाल अभिशाप या वरदान का नहीं है; असली सवाल है उस कीमिया (Alchemy) को जानने का, जो कि काँटों को फूल में रूपान्तरित कर देती है ।

कोयला ही रासायनिक प्रक्रिया से गुजर कर हीरा हो जाता है ।

संन्यास कोयला जैसी चेतना को हीरा जैसी बनाने की ही प्रक्रिया है ।

संन्यास के रसायन-शास्त्र का मूल-सूत्र तुझे कहता हूँ ।

सीधा नहीं कहूँगा ।

कहूँगा जरूर--लेकिन फिर भी तुझे उसे **खोजना** भी होगा ।

क्योंकि, परोक्ष-इशारा भी उस सूत्र की अभिव्यक्ति का अनिवार्य अंग है ।

कुछ महामंत्र हैं, जो कि **सीधे कहे ही नहीं जा सकते हैं ।**

या कहे जावें तो समझे नहीं जा सकते हैं ।

या समझे भी जावें तो उनमें निहित काव्य खो जाता है ।

और वह काव्य ही उनकी आत्मा है ।

००००

एकनाथ रोज भोर में गोदावरी में स्नान करने जाते थे ।

वे स्नान करके लौटते तो एक व्यक्ति उन पर थूक देता, वे हँसते और पुनः स्नान कर आते ।

धर्म के ठेकेदारों ने उस व्यक्ति को किराये पर रखा था ।

लेकिन, एक शर्त थी कि एकनाथ क्रोधित हों तो ही उसे पुरस्कार मिल सकता था ।

एक दिन--दो दिन--सप्ताह--दो सप्ताह--और उस व्यक्ति की मेहनत व्यर्थ ही जा रही थी ।

अंततः उसने आखिरी कोशिश की ।

और एक दिन एकनाथ पर १०७ बार थूका ।

एकनाथ बार-बार हँसते और पुनः स्नान कर आते ।

फिर उसने १०८वीं बार भी थूका ।

एकनाथ हँसे और पुनः स्नान कर आये ।

और फिर उसके पास आकर खड़े हो गये--इस आशा और प्रतीक्षा में कि शायद वह और भी थूके ।

लेकिन, वह गरीब बुरी तरह थक गया था ।

थूकते-थूकते उसका मुँह भी सूख गया था ।

एकनाथ ने थोड़ी देर प्रार्थनापूर्ण मन से प्रतीक्षा की और फिर बोले : "किन शब्दों में तुम्हारा धन्यवाद करूँ ? मैं पहले गोदावरी की गोद का आनंद एक ही बार लेता था; फिर तुम्हारी सत्प्रेरणा से दो बार लेने लगा । और आज का तो कहना ही क्या है--१०८ बार गोदावरी-स्नान का पुण्य मिला है ! श्रम तुम्हारा है, और फल मैं ले रहा हूँ !"

रजनीश के प्रणाम

९-१-१९७१

[प्रति : मा योग प्रेम, विश्वनीड़, संस्कारतीर्थ, आजोल (गुजरात)]

प्रिय कृष्ण चैतन्य,

प्रेम । शक्ति में श्रद्धा स्वयं शक्ति से भी ज्यादा शक्तिशाली है ।

शक्ति अकेली निष्प्राण है ।

उसमें प्राण तो पड़ते हैं--स्वयं में श्रद्धा से ।

शक्ति मात्र देह है--उसमें आत्मा तो आती है आत्मश्रद्धा से ।

और इतना ही नहीं कि श्रद्धाहीन शक्ति निर्जीव है; वरन् यह भी कि **श्रद्धा-विहीन शक्ति आत्मघाती** (Suicidal) **भी है ।**

क्योंकि जो शक्ति सृजनात्मक (Creative) नहीं है, वह ध्वंस में लग जाती है।

और सबसे पहले आत्म-ध्वंस में ।

क्योंकि, अनुपयोगी शक्ति स्वयं से ही बदला लेती है ।

और **आत्म-अश्रद्धा शक्ति को उपयोग की सृजन-दिशाओं में प्रवाहित नहीं होने देती । तुम्हें देखता हूँ** तो महाभारत की एक घटना सदा ही याद आती है ।

कर्ण और अर्जुन की लड़ाई बड़ी बेमेल थी ।

क्योंकि, यह सूर्य और इन्द्र की लड़ाई थी ।

कहाँ सूर्य और कहाँ बेचारा इन्द्र !

पर जो होना था वह नहीं हुआ और जो नहीं होने जैसा लगता था वह हुआ !

कर्ण को मुँह की खानी पड़ी ! और ऐसा हुआ शल्य को सारथी बना कर !

शल्य का अर्थ है : शंका; शल्य का अर्थ है : संशय ।

और कर्ण का अर्थ है : कान ।

सारे शक कान के द्वारा ही तो अंदर पहुँचते हैं, वही तो द्वार है शंकाओं का !

शल्य बार-बार कर्ण से यही कहता रहा : **'अरे ! तू अर्जुन को क्या जीतेगा !'**

और कर्ण हारा क्योंकि शल्य जीता । **शल्य से बचना ।**

उसे सारथी बनाने की कोई भी तो जरूरत नहीं है ।

रजनीश के प्रणाम

९-१-१९७१

[प्रति : स्वामी कृष्ण चैतन्य, विष्वनीड़, संस्कारतीर्थ, आजोल (गुजरात)]

प्रिय कृष्ण चैतन्य,

प्रेम ! बहुत समय पूर्व अरब में एक अद्भुत व्यापारी था।

वह असफलता से अपरिचित था।

वह जो भी छूता वही स्वर्ण हो जाता था ।

लोग उसे किसी-न-किसी प्रकार का जादूगर ही समझते थे ।

और वह था भी ।

क्योंकि, जब भी वह थोड़े दिनों के लिए अपने विलास-भवन को छोड़ कर कहीं यात्रा पर जाता तभी उसके ऊँटों को नये खजानों के बोझ से दबना पड़ता ।

कभी वे हीरे-मोतियों के भार से दबे लौटते।

कभी स्वर्ण-अशर्फियों से ।

और कभी सुन्दरतम युवतियों से ।

और फिर एक दिन अफवाह उड़ी कि उस अद्भुत व्यापारी ने अपनी सफलता का रहस्य एक किताब में प्रकट कर दिया है ।

स्वभावतः उसके द्वार पर हजारों व्यक्तियों की भीड़ इकट्ठी हो गयी।

उस व्यापारी ने न केवल यही स्वीकार किया कि उसने अपनी सफलता का राज एक किताब में लिख दिया है, वरन् यह भी कहा कि उस जादुई-पुस्तक को उसने स्वयं विगत ५० वर्षों में नियमित पढ़ा भी है ।

और अंत में उसने यह भी कहा कि यदि तुम मेरी सलाह मानोगे तो तुम्हारा जीवन भी इतना ही चमत्कारपूर्ण हो जायेगा जैसा कि मेरा है ।

लेकिन, उसने जब उत्सुकता से पागल भीड़ को दिखाने के लिए पुस्तक खोली तो उस बड़ी पुस्तक में केवल **सात शब्द ही पुनः-पुनः** लिखे हुए थे ।

वे सात शब्द मैं तुमसे भी कहना चाहता हूँ ।

वे सात शब्द हैं : "Whatever happens, always act just once more."--कुछ भी घटित हो, सदा ही एक बार और प्रयास करो ।

रजनीश के प्रणाम

९-१-१९७१

[प्रति : स्वामी कृष्ण चैतन्य, विश्वनीड़, संस्कारतीर्थ, आजोल (महेसाणा), गुजरात]

१४४ / समय और दूरी से पार—आयाम-शून्य-आयाम में प्रवेश

प्यारी मधु,

प्रेम । अब तू हो कहीं भी——होगी तो **यहीं** ।

स्थान अब भेद न करेगा ।

समय अब दीवार न बनेगा ।

शरीर की दूरी अब न दूरी होगी——न शरीर की निकटता निकटता ।

एक और ही आयाम में—आयाम-शून्य आयाम (Dimensionless Dimension) में अब तेरा प्रवेश हो रहा है ।

वहाँ अनेकता नहीं है ।

वहाँ द्वैत नहीं है ।

और वहाँ ही **मैं** है ।

वह नहीं जो 'मैं' बाहर से दिखाई पड़ता है ।

वह भी नहीं जो कि 'तू' की सीमा-रेखा है ।

वरन् वह जो कि **तू** भी है ।

'तत्त्वमसि श्वेतकेतु ।'

रजनीश के प्रणाम

९-१-१९७१

[प्रति : मा आनंद मधु, विश्वनीड़, संस्कारतीर्थ, आजोल (महेसाणा, गुजरात)]

१४५ / भय के कुहासों में साहस का सूर्योदय

प्यारी गुणा,

प्रेम । साहस कर ।

और, साहस पहले से नहीं होता है ।

वरन्, करने से ही पैदा होता है ।

और, भय भी पहले से ही नहीं है ।

वह साहस न करने से पैदा हुई ग्रंथि है ।

साहस न करके तो तूने देख ही लिया है—प्राणों पर कुहासे की भाँति छाया हुआ भय उसका **पर्याप्त** प्रमाण है ।

अब साहस करके भी देख ।

इधर साहस का सूर्य निकला कि उधर भय का कुहासा हटा ।

और ध्यान रख कि **अभय** ही आत्मा है ।

रजनीश के प्रणाम

९-१-१९७१

[प्रति : सुश्री गुणा शाह, द्वारा—श्री ईश्वर भाई शाह, बम्बई]

१४६ / अदृश्य के दृश्य और ज्ञात के अज्ञात होने का उपाय--ध्यान

मेरे प्रिय,

प्रेम । अदृश्य को दृश्य करने का उपाय पूछते हैं ?

दृश्य पर ध्यान दें।

मात्र देखें नहीं, ध्यान दें ।

अर्थात् जब फूल को देखें तो स्वयं का सारा अस्तित्व आँख बन जाये ।

पक्षियों को सुनें तो सारा तन-प्राण **कान** बन जाये ।

फूल देखें तो **सोचें** नहीं ।

पक्षियों को सुनें तो **विचारें** नहीं ।

समग्र चेतना (Total Consciousness) देखें या सुनें या सूँघें या स्वाद लें या स्पर्श करें ।

क्योंकि, संवेदनशीलता (Sensitivity) के उथलेपन के कारण ही अदृश्य दृश्य नहीं हो पाता है, और अज्ञात अज्ञात ही रह जाता है ।

संवेदना को गहरावें।

संवेदना में तैरें नहीं, डूबें।

इसे ही मैं ध्यान (Meditation) कहता हूँ ।

और ध्यान में दृश्य भी खो जाता है और अन्ततः दृष्टा भी ।

बचता है केवल दर्शन ।

उस दर्शन में ही अदृश्य दृश्य होता है और अज्ञात ज्ञात होता है ।

यही नहीं--अज्ञेय (Unknowable) भी ज्ञेय हो जाता है ।

और ध्यान रखें कि जो भी मैं लिख रहा हूँ--उसे भी सोचें न, वरन् करें ।

'कागज लेखी' से न कभी कुछ हुआ है, न हो ही सकता है ।

'आँखन देखी' के अतिरिक्त और कोई द्वार नहीं है ।

रजनीश के प्रणाम

१२-१-१९७१

[प्रति : श्री लाल प्रताप, गाँव भुडाह, पो० संगीपुर, जिला प्रतापगढ़ (अवध)]

१४७ / आत्मज्ञान के दिये, समाधि के फूल-मौन में, शून्य म

प्रिय योग प्रेम,

प्रेम । एक अद्भुत गुरु था--सोईची (Shoichi) । उसने जिस दिन से तोफुकु (Tofuku) मंदिर में शिक्षण देना शुरू किया, उसी दिन से मंदिर का रूपांतरण हो गया ।

दिन आता--दिन जाता । रात आती--रात जाती ।

लेकिन तोफुकु मंदिर सदा मौन ही खड़ा रहता ।

वह मंदिर एक गहन सन्नाटा हो गया ।

उस मंदिर से जरा-सी भी आवाज न उठती ।

शास्त्रों से सूत्रों का पाठ भी बंद हो गया, प्रार्थना-पूजा बंद हो गयी ।

यहाँ तक कि मंदिर के घंटे भी सदा सोये रहते--उन्हें भी कोई न छेड़ता ।

क्योंकि, सोईची के शिष्यों को **सिवाय ध्यान** के और कुछ भी न करना था ।

बरसों तक ऐसा ही रहा । लोग भी भूल गये कि पड़ोस में कोई मंदिर है ।

सैकड़ों संन्यासी थे वहाँ; और बड़ी गतिविधि थी ।

लेकिन, मौन और शून्य ।

बड़ी-बड़ी घटनाएँ वहाँ घटती थीं ।

आत्मज्ञान के दिये जलते थे; समाधि के फूल खिलते थे ।

लेकिन, मौन और शून्य ।

और फिर एक दिन लोगों ने सुना कि मंदिर के घंटे बज रहे हैं और शास्त्रों से सूत्र पढ़े जा रहे हैं--यह कैसी अनहोनी ?

लोग भागे मंदिर की ओर । सारा नगर द्वार पर इकट्ठा हो गया ।

सोईची ने संसार छोड़ दिया था ।

उसके शव के पास ही शास्त्रों से सूत्र पढ़े जा रहे थे !

और उसके शव के ऊपर ही घंटे बजाये जा रहे थे !

लोग चकित थे; लेकिन मैं सोचता हूँ कि यह ठीक ही है, **क्योंकि जब तक कोई मंदिर जीवित होता है तो मौन होता है।**

रजनीश के प्रणाम

१३-१-१९७१

[प्रति : मा योग प्रेम, विश्वनीड़, संस्कारतीर्थ, आजोल (गुजरात)]

प्रिय प्रेम कृष्ण,

प्रेम। ध्यान अक्रिया भी है और क्रिया भी।

अक्रिया ऐसी कि जो क्रिया की विरोधी न हो।

और क्रिया ऐसी कि जिसके केन्द्र पर अक्रिया हो।

और भीतर कर्त्ता का भाव न हो तो यह चमत्कारपूर्ण स्थिति स्वतः ही फलित होती है।

और साक्षी की उपस्थिति कर्त्ता की अनुपस्थिति है।

००००

एक फकीर था होटेई (Hotei)।

पर अपने ही ढंग का--वैसे भी फकीर कभी किसी और के ढंग के होते ही कब हैं?

उसका न कोई आश्रम था, न मंदिर, न विहार।

और न ही उसके कोई शिष्य थे।

सड़कें ही उसका निवास थीं।

सड़कें ही आश्रम--मंदिर--विहार।

कंधे पर एक झोला लटकाये वह दिन भर सड़कों पर घूमता रहता। उसके झोले में फल होते, मिठाइयाँ होतीं और खिलौने होते। बच्चों को वह उन्हें बाँटता रहता और बच्चों के साथ नाचता, गाता, हँसता--और उन्हें कहानियाँ सुनाता और ऐसे वह उनमें अपरोक्ष ध्यान के बीज बोता। सड़कों पर ही बच्चे उसके साथ ध्यान में खो जाते। सड़कों के वे कोने पवित्र हो जाते और राहगीर वहाँ से मौन और शांत होकर निकलते।

होटेई जीवित ध्यान था और वह जहाँ खड़ा होता वहीं मंदिर था।

ध्यान के प्रेमी राहगीरों से वह कहता: "एक पैसा ध्यान के लिए भी।" और उसका झोला पैसों से भर जाता। कभी-कभी कोई उससे कहता कि वह मंदिर में चले और लोगों को धर्म-शिक्षा दे तो वह हँसता और कहता: "एक पैसा और मंदिर के लिए।"

वह जिस गाँव से गुजरता--वहीं उसकी खबर घर-घर पहुँच जाती। बच्चे उसके संदेशवाहक बन जाते, क्योंकि उनके चेहरों पर अलौकिक का आलोक छा जाता और उनकी आँखों में अपूर्व आनंद के फूल खिल जाते। होटेई का कहीं से गुजरना हँसते हुए ध्यान का ही गुजरना था। धीरे-धीरे लोग उसका नाम ही भूल गये और उसे 'हँसता हुआ बुद्ध' (The Laughing Buddha) करके ही जानने लगे थे।

एक दिन किसी गाँव में एक धर्म-पण्डित ने राह में उसे रोका और उससे पूछा: 'ध्यान क्या है?'

निश्चय ही उसने सोचा होगा कि होटेई शास्त्रों का उल्लेख करेगा और ध्यान की परिभाषा बतायेगा; लेकिन होटेई उसके प्रश्न पर खिलखिला कर हँसा और फिर उसने अपना झोला जमीन पर गिरा दिया; आँखें बंद कर लीं और ध्यान में खो गया। उसकी आँखों से आनंदाश्रु बहने लगे और उसका शरीर ही वहाँ रहा--वह स्वयं तो कहीं और ही चला गया!

आह! ठीक जो उत्तर हो सकता था, वही उसने दिया! लेकिन, पंडित नहीं समझा--पंडितों से ज्यादा ना-समझ व्यक्ति ऐसे भी खोजना कठिन है!

पंडित ने होटेई को हिला कर उसका ध्यान तोड़ दिया और पुनः पूछा: "ध्यान का व्यावहारिक रूप क्या है?"

जैसे कि होटेई ने जो उत्तर दिया था, वह अव्यावहारिक था।

होटेई पुनः हँसा और उसने अपना झोला पुनः कंधे पर रख लिया--पंडित को झुक कर अभिवादन किया और अपनी यात्रा पर चल पड़ा! उसके पैरों की ध्वनि में वही शांति थी, जो कि उसके मौन में थी। यह उसका दूसरे प्रश्न का उत्तर था!

रजनीश के प्रणाम

१४-१-१९७१

[प्रति : स्वामी प्रेम कृष्ण, विश्वनीड़, संस्कारतीर्थ, आजोल]

मेरे प्रिय,

प्रेम । शुभ हैं लक्षण ।
अमूल्य है अवसर ।
प्रभु समर्पण करें और आगे बढ़ें ।
आलोक निरन्तर बढ़ेगा और अन्ततः आलोक ही आलोक शेष रह जाता है ।
अंधकार बचता ही नहीं है ।
अंधकार हमारे अज्ञान के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं है ।
और जहाँ अज्ञान नहीं--अंधकार नहीं, **वहाँ अहंकार भी नहीं ।**
फिर तो बूंद नहीं, सागर ही है ।
फलों के बिना ही सुगंध बरस रही है न ?
वाद्य बिना संगीत भी बरसेगा ।
अनाहत नाद निकट है ।
बढ़ें ।
प्रार्थनापूर्ण हृदय से आगे बढ़ें ।
शुभ हैं लक्षण ।
और अमूल्य है अवसर ।

रजनीश के प्रणाम

७-१-१९७१

[प्रति : श्री हरिकृष्ण भट्ट, ४।८८७, सेंट्रल बैंक के सामने,
पो० नवसारी, बलसाड़ (गुजरात)]

प्यारी धर्मकीर्ति,

प्रेम । अपूर्व है आनंद ध्यान का ।
अलौकिक है अनुभूति आनंद की ।
जैसे सदा से बंद द्वार खुलते हैं ।
या जैसे अपरिचित अंधकार में सदा से परिचित सूर्य का आगमन होता है ।
हृदय की कली अचानक फूल बन जाती है ।
और प्राणों की अन्तर्वीणा पर अनाहत नाद बजता है ।
नृत्य करती है श्वांस-श्वांस ।
और गीत गाता है तन मन का अणु-अणु ।
अनुगृहीत हो ।
आह्लाद से भर ।
प्रभु को धन्यवाद दे ।
और कहने दे मेरे समस्त अस्तित्व को : "प्रभु की अनुकंपा अपार है ।"

रजनीश के प्रणाम

४-१-१९७१

[प्रति : मा धर्मकीर्ति, विश्वनीड़, संस्कारतीर्थ, आजोल,
महेसाणा (गुजरात)]

भगवान्श्री रजनीश-साहित्य

क्र०	पुस्तक	भाषा हिंदी	गुज०	मराठी	अंग्रेजी	पृष्ठ हिंदी	मूल्य हिंदी
१.	साधना-पथ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	१५४	५–००
२.	क्रांति-बीज	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	१३८	४–००
३.	सिंहनाद	हाँ	हाँ	हाँ	नहीं	८०	१–२५
४.	मिट्टी के दिये	हाँ	हाँ	...	हाँ	१९६	३–५०
५.	पथ के प्रदीप	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	२१३	३–५०
६.	मैं कौन हूँ ?	हाँ	हाँ	...	हाँ	१०३	२–००
७.	अज्ञात की ओर	हाँ	हाँ	...	हाँ	७१	२–००
८.	नये संकेत	हाँ	हाँ	...	हाँ	७३	१–७५
९.	संभोग से समाधि की ओर	हाँ	हाँ	...	हाँ	१४६	५–००
१०.	अन्तर्यात्रा	हाँ	हाँ	...	निर्माणरत	२२२	३–५०
११.	शांति की खोज	हाँ	निर्माणरत		...	१०४	२–००
१२.	सत्य की खोज	हाँ	...	...	...	१२३	४–००
१३.	अस्वीकृति में उठा हाथ	हाँ	...	...	...	१५४	५–००
१४.	शून्य की नाव	हाँ	...	...	...	११६	३–००
१५.	प्रभु की पगडण्डियाँ	हाँ	...	...	निर्माणरत	१५८	४–००
१६.	सत्य की पहली किरण	हाँ	...	...	...	१८८	६–००
१७.	समाजवाद से सावधान	हाँ	निर्माण०	...	निर्माण०	१३६	४–००
१८.	प्रेम के फूल	हाँ	...	हाँ	...	१८०	५–००
१९.	ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया	हाँ	...	...	...	१४२	४–००
२०.	संभावनाओं की आहट	हाँ	...	...	...	१६५	६–००
२१.	जिन खोजा तिन पाइयाँ	हाँ	...	...	...	६०८	२०–००
२२.	गीता-दर्शन (पुष्प–१)	हाँ	..	..	..		३–००
२३.	गीता-दर्शन (पुष्प–२)	हाँ	...	...	...	१३८	४–००

क्र०	पुस्तक	भाषा हिंदी	गुज०	मराठी	अंग्रेजी	पृष्ठ हिंदी	मूल्य हिंदी
२४.	गीता-दर्शन (पुष्प–५)	हाँ	...	...	...	१६२	५–००
२५.	अमृत-कण	हाँ	हाँ	हाँ	...	२४	०–६०
२६.	अहिंसा-दर्शन	हाँ	हाँ	...	हाँ	३२	०–४०
२७.	कुछ ज्योतिर्मय क्षण (प्रेस में)	हाँ	हाँ	...	...	५५	१–००
२८.	नये मनुष्य के जन्म की दिशा	हाँ	हाँ	...	...	४०	०–७५
२९.	सूर्य की ओर उड़ान	हाँ	हाँ	...	...	६५	१–००
३०.	प्रेम के पंख	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	५७	०–७५
३१.	सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	हाँ	हाँ	...	...	५५	१–५०
३२.	नारगोल : युवक-युवतियों के समक्ष प्रवचन	हाँ	हाँ	...	...	२०	०–२५
३३.	क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार (भारत के साधु-संत)	हाँ	हाँ	...	...	३०	०–३५
३४.	न आँखों देखा, न कानों सुना (गोपनीय गांधी)	हाँ	...	...	...	८	०–१५
३५.	क्रांति की नयी दिशा, नयी बात (नारी और क्रान्ति)	हाँ	...	...		३०	०–३०
३६.	व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज	हाँ	हाँ	...	...	२०	०–२५
३७.	युवक कौन ?	हाँ	...	...	...	२४	०–३०
३८.	युवा और यौन	हाँ	हाँ	...	...	२४	०–३०
३९.	बिखरे फूल (बोध-वचन संकलन)	हाँ	...	...	...	३६	०–३५
४०.	संस्कृति के निर्माण में सहयोग	हाँ	...	...	...	२८	०–३०
४१.	प्रेम और विवाह	हाँ	...	...	...	३२	१–५०
४२.	मन के पार	हाँ	...	...	...	८५	१–००

क्र०	पुस्तक	भाषा हिंदी	गुज०	मराठी	अंग्रेजी	पृष्ठ हिंदी	मुल्य हिंदी
४३.	पूर्व का धर्म : पश्चिम का विज्ञान	हाँ	...	...	...	२५	०–५०
४४.	परिवार-नियोजन	हाँ	...	...	...	३२	०–७५
४५.	सारे फासले मिट गये	हाँ	...	...	...	८४	१–२५
४६.	अन्तर्वीणा	हाँ	...	...	...	१९२	६–००
४७.	ढाई आखर प्रेम का	हाँ	...	...	...	१९२	६–००
४८.	महावीर : मेरी दृष्टि में	हाँ	...	...	...	७७२	३०–००

प्रेस के लिए बड़ी पुस्तकें :

४९. मैं मृत्यु सिखाता हूँ (ध्यान, समाधि और मृत्यु पर १५ प्रवचन)

५०. सूली ऊपर सेज पिया की (पंच महाव्रत पर ८ प्रश्नोत्तर-प्रवचन)

५१. कृष्ण : मेरी दृष्टि में (कृष्ण के जीवन, साधना व संदेश पर २७ घंटे के प्रवचन)

५२. गीता-दर्शन (गीता के प्रथम ४ अध्यायों पर ५० घंटे के प्रवचन)

पुस्तकें प्रेस के लिए :

५३. पद घुंघरू बाँध (१५० पत्रों का संकलन)

५४. घूँघट के पट खोल (१५० पत्रों का संकलन)

५५. जीवन ही है परमात्मा (जूनागढ़ साधना-शिविर प्रवचन एवं ध्यान-प्रयोग)

५६. जो घर बारै आपना (आजोल साधना-शिविर प्रवचन एवं ध्यान-प्रयोग)

५७. शून्य के पार (ज्ञान, भक्ति व कर्म पर दिये गये राजकोट के ४ प्रवचन)

५८. समाधि के द्वार पर (पूना में दिये गये प्रवचन एवं ध्यान के प्रयोग)

५९. योग : नये आयाम (पूना में दिये गये प्रवचन एवं ध्यान के प्रयोग)

पुस्तकें जो केवल गुजराती में हैं :

क्र०	पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ	मूल्य
६०.	गांधी मा डोकीयु अने समाजवाद	प्रकाशक युवक क्रांति दल, द्वारा जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई	२९	०–३५
६१.	अतीत नी आलोचना अने भावी नु चिंतन	,,	२०	०–३५
६२.	भ्रांत समाजवाद : और एक खतरो	,,	२७	०–५०
६३.	तरुण विद्रोह	,,	३२	०–५०
६४.	जीवन अने मृत्यु	,,	६३	१–००
६५.	परमात्मा क्यां छे?	आर० अम्बाणी एण्ड कं०, राजकोट	३४	०–५०
६६.	प्रेम, परमात्मा अने परिवार	आर० अम्बाणी एण्ड कं०, राजकोट	४०	०–५०
६७.	गांधीवादी क्यां छे ?	,,	४०	०–५०
६८.	गांधीवाद : वैज्ञानिक दृष्टिए	,,	२८	०–५०
६९.	धर्म अने राजकारण	,,	२१	०–४०
७०.	उठ जाग जुवान	,,	३२	०–५०
७१.	गांधीजी नी अहिंसानु पुनरावलोकन	,,	३२	०–५०
७२.	क्रांति नी वैज्ञानिक प्रक्रिया	,,	२८	०–६०
७३.	धर्म विचार नथी उपचार	,,	२८	०–६०
७४.	व्यस्त जीवन मां ईश्वर नी शोध	,,	१९	०–५०
७५.	समाजवाद थी सावधान	,,	४२	०–७५
७६.	पूर्णावतार श्रीकृष्ण	,,	१६	०–५०
७७.	प्रेम नी प्राप्ति	संस्कारतीर्थ, आजोल, जि० महेसाणा	३२	०–४०
७८.	अभिनव संन्यास	,,	३२	०–५०
७९.	ध्यान	,,	३२	०–५०
८०.	प्रेम	,,	४५	०–७५
८१.	परिवार	,,	४८	०–७५
८२.	संकल्प	,,	४८	०–७५
८३.	अन्तर्द्रंष्टा आचार्य रजनीशजी जीवन चरित्र (अनु० श्री यशवंत मेहता)	साहित्य निधि, २१।२२, प्रीतमनगर, एलिस ब्रिज, अहमदाबाद	४०	०–७५
८४.	अन्तर्द्रंष्टा आचार्य रजनीशजी जीवन प्रसंगो	,,	३२	०–५०
८५.	अन्तर्द्रंष्टा आचार्य रजनीशजी नी ज्ञानवाणी	,,	६४	०–५०

आलोचनात्मक अध्ययन ग्रन्थ :

८६. आचार्य रजनीश : समन्वय, विश्लेषण और संसिद्धि (हिन्दी)
आलोचक––डॉ० रामचन्द्र प्रसाद — २१४ — ७–५०
प्रकाशक : मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली — २४० — ३–००

८७. काम, योग, धर्म और गांधी

८८. आचार्य रजनीश : कया मार्गे ? (गुजराती)
आलोचक : श्री नानुभाई डाह्याभाई नायक — १७२ — २–००
प्रकाशक : साहित्य संगम, बड़ौदा

८९.	आचार्य रजनीश : ए मिस्टिक ऑफ फीलिंग आलोचक : डॉ० रामचन्द्र प्रसाद प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	२४०	२०–००
९०.	रजनीश : ए ग्लिम्प्स (अंग्रेजी) लेखक : वी० वोरा	२४	१–२५
९१.	जीवन क्रांति की दिशा (हिंदी) आचार्यश्री से डॉ० सेठ गोविंददास द्वारा की गयी चर्चाओं के नोट्स प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली	१३२	२–००
९२.	समाजवादा पासून सावध रहा (मराठी) प्रकाशक : जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई	१२	०–५०
९३.	अहिंसा-दर्शन (गुरुमुखी)		०–४०
९४.	जीवन जो राज (सिंधी)	४०	०–५०
९५.	साधना-पथ (पंजाबी)	१७५	३–००

(नयी पुस्तकें)

९६.	प्रेम है द्वार प्रभु का	२५०	८–००
९७.	मैं कहता आँखन देखी (प्रश्नोत्तर-प्रवचन)	१३६	५–००
९८.	गहरे पानी पैठ	१३८	५–००
९९.	दी गेटलेस गेट (अंग्रेजी)	४८	२–००
१००.	दी सायलेंट म्युजिक (,,)	४०	२–००
१०१.	लिफ्टिंग दी व्हील (अंग्रेजी) स्वामी आनन्द वीतराग		(प्रेस में)

प्राप्ति-स्थान

जीवन-जागृति केन्द्र

(१) ५३, एम्पायर बिल्डिंग, १ ली मंजिल,
१४६, डॉ० डी. एन. रोड, **बम्बई–१**; फोन : २६४५३०

(२) इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन,
मस्जिद बंदर रोड, **बम्बई–१**; फोन्स : ३३९५६०, ३३७६१८,
३२७००९

(३) A-1, Woodland. Apt, Peddar Road,
Bombay-26, Phone : 382184

●